प्रस्तुत पुस्तक रविदास ठाकुर बणि आई तराशे हुए हीरे की तरह है। निःसन्देह इससे पहले कई विद्वानों ने सद्गुरु रविदास महाराज जी के जीवन-परिचय एवं उपदेशों से संबंधित अनेक पुस्तकें लिखीं जो प्रशंसनीय हैं परंतु इस पुस्तक में लेखिका 'राधा' ने सद्गुरु रविदास महाराज जी से संबंधित ऐतिहासिक स्थानों पर जाकर, वहां से उचित जानकारी प्राप्त कर प्रमाणिकता की छाप लगाई है। पुस्तक की भाषा चाहे सरल है लेकिन इसमें वर्णित विषय-सामग्री को इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि यह पुस्तक श्री गुरु अर्जुन देव जी की वाणी :-

'ऊच ते ऊच नाम देउ समदरसी
रविदास ठाकुर बणि आई ।'

के अनुसार सिद्ध करती है कि सद्गुरु रविदास महाराज जी केवल भक्त, संत, गुरु, या सद्गुरु ही नहीं थे बल्कि वे 'ठाकुर' (स्वयं खुदा) थे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्री गुरु रविदास मिशन से जुड़े सभी श्रद्धालु, साहित्य का रसपान करने वाले पाठक एवं जौहरी विद्वान इस पुस्तक का हार्दिक अभिनंदन करेंगे।

भूमिका

भक्तिकाल के संस्थापक एवं शिरोमणि संत सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के जीवन परिचय एवं कृतित्व पर अनेक आधुनिक लेखकों ने अपनी कलम चलाई, आप जी के जीवन से संबंधित तथ्य एकत्रित किए और अनेक पुस्तकें हमारे हाथों में पहुँची। जब सेविका ने सभी पुस्तकों को पढ़ा, अध्ययन किया तो सद्‌गुरु जी के जीवन से संबंधित भिन्न-भिन्न विचार पाकर किसी एक निष्कर्ष पर न पहुँच पाई। मन की दुविधाओं को श्री श्री 108 स्वामी गुरदीप गिरि जी के समक्ष प्रस्तुत किया। गुरु कृपा से फिर सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के जन्म-स्थान जाने का सुअवसर भी मिल गया। वहां सभी महापुरुषों के साथ विचार-विमर्श हुआ। स्थानीय लोगों से भी बातचीत की और संकल्प किया कि पाठकों की सेवा में कुछ इस प्रकार के तथ्य प्रस्तुत करूँ, जिससे अन्य पाठकों को इस प्रकार की समस्याओं में से न गुज़रना पड़े। इस पुस्तक में हमने गुरु जी के जन्म, जन्मस्थान, माता-पिता एवं अन्य घटनाओं का उल्लेख न केवल गहन अध्ययन और शोध के बाद किया है बल्कि इतिहास की तिथियों को भी ध्यान में रखा है। गुरु जी के प्रति चमत्कारी घटनाओं को भी वैज्ञानिक एवं प्रमाणित रूप देने का भरसक प्रयास किया है।

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने एक ऐसे विश्व की कल्पना की, जहां पर सभी को पेट भर खाना मिल सके, पहनने के लिए कपड़ा और रहने के लिए घर मिल सके। जहां सभी बराबर हों :-

ऐसा चाहूँ राज मैं जहां मिलै सबन को अन्न ।
छोट बड़ो सभ सम बसें, रविदास रहै प्रसन्न । ।

मध्यकाल का सत्ता वर्ग एवं उच्च वर्ग नहीं चाहता था कि जाति भेदभाव को समाप्त कर सभी को समानता का अधिकार मिले। यही कारण था कि सद्‌गुरु रविदास महाराज जी को समाज के उच्च वर्ग के साथ समय-समय पर लोहा लेना पड़ा। शंख बजाकर, जनेऊ धारण कर, मस्तिष्क पर तिलक लगाकर, पण्डितों वाला पहरावा पहनकर, आप जी ने यह बताया कि प्रत्येक व्यक्ति मनचाहा पहरावा पहन सकता है।

गंगा में स्नान कर यह प्रमाणित किया कि इसका जल कभी किसी के स्नान करने से अपवित्र नहीं होता, चाहे वह किसी भी जाति से हो ।

परंपरावादी पूजा-साधनों एवं पूजा-सामग्री का वैज्ञानिक ढंग से खंडन कर सच्ची पूजा का नया सिद्धांत प्रस्तुत किया :- कहै रविदासु नामु तेरो आरती सतिनामु है हरि भोग तुहारे । इन सभी प्रमाणित सच्चाइयों के कारण आखिर सभी को गुरु जी के समक्ष झुकना पड़ा।

रविदासु चमारु उसतति करे हरि कीरति निमख इक गाइ ।
प्रतित जाति उतमु भइया चारि वरन पए पगि आइ ।।

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी एक महान वैज्ञानिक एवं क्रांतिकारी थे । आप जी की वाणी का एक-एक अक्षर तर्कयुक्त बिम्बों एवं सटीक प्रतीकों को दर्शाता है। रुढ़िवादिता एवं कर्मकांडी सामग्री का खण्डन कर आप जी ने समाज को ऐसे नए सिद्धांत दिए हैं, जिनको कभी भी झुठलाया नहीं जा सकता। आप जी की विचारधारा आज भी प्रासंगिक है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा, शाही घराने की रानियाँ और सभी वर्णों-धर्मों के लोगों को आप जी की सोच के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा। सद्‌गुरु रविदास महाराज जी की महानता का गुणगान आप जी के समकालीन संत महापुरुषों और बाद के महापुरुषों ने भी अपनी वाणी में किया है।

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के समकालीन भक्तिकाल के महान संत सद्‌गुरु कबीर महाराज जी ने आप जी को महान संत एवं ऋषि कहा है:-

साधन में रविदास संत हैं।
सुपच ऋषि सो मानया ।
हिन्दु तुर्क दुई दीन बने हैं
कुछ नहीं पहचानिया । ।

आप जी के समकालीन संत पीपा जी ने सद्‌गुरु रविदास जी की विलक्षण प्रतिभा का वर्णन इस प्रकार किया है :

जे कलि रैदास कबीर न होते
ते लोक वेद अरु कलजुग
मिलि कर भगति रसातल देते ।

संत धन्ना जी ने गुरु जी को महान संत बताते हुए कहा है कि आप ने माया का त्याग कर प्रभु के दर्शन किए :-

रविदास दुवंता ढोर नीति
तिन्हि तियागी माइआ
परगटु होआ साधसंगि
हरि दरसनु पाइआ । ।

संत गोसांई दास जी लिखते हैं कि चमड़े का कार्य करने वाले सद्‌गुरु रविदास जी ने प्रभु-भक्ति करके अमर-पद प्राप्त कर लिया है :-

ढोर भरित दुरिगंध ऊठित है, मुख दापति लैति सवासा ।
ताहि तुचा लै पनिहां गांठे, भगति भयो रविदासा ।।

संत अनंतदास जी ने गुरु रविदास जी को नारद का रूप और परमात्मा के मसीहा कहा है :-

अबरु येक रैदास चमारा,जानि नारद लीनो ओतारा
सूद्र कहो ते आवे लाजा,दरशनि कारनि तलफै राजा ।

पण्डित मरम न जानै कोई, विशन समान ओतरै दोई।।

संत एकनाथ जी ने सद्‌गुरु रविदास जी की भक्ति के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा है :-

रोहिदास चमार सब कुछ जाने ।
कठोरे गंगा देखा । ।

भाई गुरदास जी रचित 'दसवीं वार' में गुरु रविदास की महिमा एक भक्त के रूप में की है :-

भगतु भगतु जगि वजिया
चहूँ चक्कां दे विचि चमिरेटा ।
पाणा गंढै राह विच कुला
धर्म ढोइ ढोर समेटा । ।

संत कवयित्री मीरा जी ने अपना सर्वस्व सद्‌गुरु रविदास को ही कहा

नहि मैं पीहर सासरे, नहीं पिया जीरी साथ,
मीरा ने गोबिन्द मिलिया जी,गुरु मिलिया रैदास । ।

संत तुकाराम जी गुरु रविदास जी को ही अपने सगे-संबंधी मानते
लिखते हैं :-

नागाजन मित नरहरि सुनार,
रविदास कबीर सगे मेरे ।।

संत कर्मदास जी ने लिखा है कि जो भी गुरु जी के चरणों का ध्यान करता है, वह स्वयं भी तर जाता है और दोनों कुलों का भी उद्‌धार कर देता है :-

समंत्रम् रविदास वचनं
कोटि दोष विनाशं ।
रविदास चरणं ध्यान धरणं
कुल समूह उद्‌धारणम् ।

इस प्रकार अनेक महान संतों, विद्‌वानों एवं महापुरुषों ने सद्‌गुरु रविदास महाराज जी की शोभा के गीत गाए । यही कारण है कि गुरु अर्जुन देव जी ने आप जी को दुनिया के ठाकुर, गुरुओं के गुरु और ऊँचों के ऊँच कहा है : -

भलो कबीर दासु दासन को
ऊतमु सैनु जनु नाई । ।
ऊच ते ऊच नामदेउ समदरसी
रविदास ठाकुर बणि आई ।

गुरु प्यारी साध संगत जी! इस ठाकुर की महिमा अकथ है। विश्व का कोई भी कोश महाराज जी की महानता को अपने शब्दों के जाल में बांध नहीं सकता। आप जी की पवित्रता, महानता एवं प्रासंगिकता तो समुद्र की लहरों का ऐसा प्रवाह है, जिसे निरंतर अपने अलौकिक दृश्य से सभी को आकर्षित करना हैं, शाश्वत आनंद प्रदान करना है, लेकिन सेविका ने परम श्रद्धेय स्वामी गुरदीप गिरि जी की प्रेरणा से सद्गुरु रविदास महाराज जी के पावन जीवन की गाथा को अपने भावों के सूत्र में पिरोकर आप सभी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

इस रचना के लिए सर्वप्रथम प्रेरणा - पुंज श्री श्री 108 स्वामी गुरदीप गिरि महाराज जी के चरणों में शत्-शत् प्रणाम करती हूँ, जिन्होंने मुझे सद्गुरु रविदास महाराज जी के महान जीवन-परिचय को कलमबद्ध करने की शक्ति प्रदान की । आभारी हूँ, उन लेखकों की, जिनकी पुस्तकों के विषयवस्तु ने मेरे ज्ञान को समृद्ध किया है । अपने सहयोगी आदरणीय सूबेदार (रिटा) रोमाल चंद गुरदासपुरी, श्री प्रवीण रत्न का भी आभार व्यक्त करती हूँ। 'दीप - प्रकाश' पत्रिका के सभी पाठकों एवं लेखकों का भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने 'श्री गुरु रविदास दर्शन' को पढ़कर, अनेक प्रशंसनीय पत्र लिखकर मेरा उत्साह बढ़ाया और मुझे पुस्तक लिखने के लिए प्रोत्साहित किया । अपने परिवार की भी ऋणि हूँ जिन्होंने मुझे लिखने के लिए समय, सहयोग एवं अनुकूल वातावरण प्रदान किया ।

मुझे पूर्ण आशा है कि समूह संगत इस पुस्तक से अवश्य लाभान्वित होगी ।

संक्षिप्त जीवन परिचय सद्‌गुरु रविदास महाराज जी

नाम	श्री गुरु रविदास महाराज जी
माता का नाम	कलसाँ
पिता का नाम	संतोख दास
जन्म स्थान	सीर गोवर्धनपुर, नज़दीक मंडुआडीह वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
जन्म तिथि	चौदह सौ तैंतीस (विक्रमी) माघ सुदी पूर्णिमा 1377 ई.
दिन	रविवार
संतान	कोई नहीं
ब्रहमलीन वर्ष	1527 ई.
ब्रहमलीन स्थल	चितौड़गढ़

जीवन परिचय

चौदह सौ तैंतीस की माघ सुदी पंदरास ।
दुखियों के कल्यान हित, प्रगटे श्री रविदास ।।

दूसरों का कल्याण करने वाली अनमोल मानव जाति जब मानव के द्वारा ही शोषित होती है और जब इस शोषण रूपी पाप का घड़ा भर जाता है तो धरती इस अन्याय के बोझ को सहन नहीं कर पाती। तब कई शताब्दियों के पश्चात् कोई महान आत्मा मानव-रूप में धरती पर अवतार धारण करती है और उस अन्याय और शोषण को समाप्त कर शोषितों के भाग्य को जगाती है, अधर्म का नाश कर धर्म का प्रसार करती है ।

आज का भारत जिसे 'सोने की चिड़िया' भी कहा जाता था, जहां लगभग 4000 साल पहले रह रहे आदिवासी लोग (मूल निवासी) जाति, रंग, लिंग, धर्म, भेद-भाव से रहित आपसी प्रेम-प्यार का जीवन व्यतीत कर रहे थे। आदिवासी राजा भी प्रजा-हित कार्य करते थे। राजा प्रजा के को ही अपना सुख समझता था। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की सभ्यता इसका प्रमाण है। वैर-विरोध, ईर्ष्या आदि शब्द उन लोगों के शब्दकोश में नहीं थे। समय बीतता गया और भारत में कुछ विदेशी जातियों ने प्रवेश किया, जिन्होंने इस प्रेम-भाईचारे के अमृतकुण्ड में स्वार्थ, ईर्ष्या और द्वेष का विष घोल कर इन मूल निवासियों की एकता को खंडित कर दिया। 'सोने की चिड़िया' के पंख काट दिए गए। पूरे भारत को अनेक जातियों में बांट कर चार वर्ण बना दिए गए शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण। इन चारों वर्णों के काम भी अलग–अलग कर दिये गये। शूद्र को सफ़ाई करने और ऊपर वाले तीनों वर्णों के लोगों की सेवा करने का कार्य सौंप दिया गया। वैश्य को व्यापार और शिल्प की चीजें तैयार करना और अपने से ऊपर क्षत्रिय एवं ब्राह्मणों की सेवा करने का कार्य सौंप दिया गया। क्षत्रिय का काम देश की रक्षा के साथ-साथ ब्राह्मणों की रक्षा करना निश्चित किया गया।

इन सभी वर्गों के प्रशासन की डोर ब्राह्मणों ने अपने हाथ में ले ली। विद्या पढ़ना और पढ़ाने का काम ब्राह्मणों ने अपने पास रख लिया। क्षत्रियों को भी विद्या पाने की अनुमति दे दी गई क्योंकि क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की रक्षा करनी होती थी जो बिना विद्या के असंभव थी, किंतु शूद्र और वैश्य को विद्या के नाम से भी दूर रखा गया। परिणामस्वरूप ब्राह्मण वर्ण सत्ताधारी वर्ग के रूप में सामने आया और उन्होंने अलग-अलग वर्गों के लिए भिन्न-भिन्न कानून बना दिए ।

इन कानूनों के अनुसार एक ही जुल्म के लिए अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग सजा निश्चित की गई। शूद्र और वैश्य को किसी भी अपराध की सजा अन्य लोगों से बहुत ज़्यादा दी जाती। जबकि क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ग से संबंध रखने वाला अपराधी उसी अपराध के लिए कम से कम सजा पाता। यदि कोई शूद्र अपराध करता तो उसे मौत की सजा दी जाती और यदि वही अपराध कोई ब्राह्मण करता तो उसकी केवल एक अंगुलि काट दी जाती। उसकी एक अंगुलि शूद्र के पूरे जीवन के समान समझी जाती। अतः इसी प्रकार के बढ़ते हुए जुल्मों और अन्याय की हवा ने अब आंध् का रूप धारण कर लिया था और समाज में शूद्र कहलाई जाने वाली जाति के लोगों से उनके प्राकृतिक अधिकार भी छीन लिए गये अर्थात शूद्र नींद आने पर अपनी इच्छा के अनुसार सो नहीं सकता था, प्यास लगने पर पानी नहीं पी सकता था । श्रेष्ठ समझा जाने वाला मानव-जीवन उसे

बोझ लगने लगा। वह इससे छुटकारा पाने का प्रयास सोचने लगा तो आखिर प्रकृति ने अपना करिश्मा दिखा ही दिया। जिस प्रकार दुनिया में ऐसी कोई अंधेरी रात नहीं होती जिसका प्रभात-वेला न हो, ठीक इसी तरह कोई भी जुल्म ऐसा नहीं होता जिसका कोई अंत न हो।

अतः जब-जब भी धरती पर अन्याय का भूत सिर पर चढ़कर बोलने लगा, राजा एक कसाई की तरह व्यवहार करने लगा, धरती माता ने प्रभु-चरणों में प्रार्थना की कि अब अत्याचार का बोझ असहनीय हो गया है।

हे प्रभु! मुझे इस बोझ से मुक्त कीजिए। ऐसे समय की ही बात कहते हुए सद्गुरु रविदास महाराज जी ने अपनी वाणी में लिखा हैं :-

जब जब फैलेई जगत मंहि,
कूड़ पाप अंधकार
तब तब राखै हत्थ देई,
रविदास एक राम हमार ।।

(रविदास दर्शन 65)

जब-जब भी इस जगत में पाप बढ़े, धर्म को आँच आने लगी, तब-तब मालिक ने किसी न किसी महान आत्मा को धरती के लोगों का उद्धार करने के लिए इस संसार में भेजा ।
गीता में भी कहा गया है :

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृहाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थय सम्भवामि युगे युगे ।।

अर्थात जब-जब धर्म का नाश हुआ, अधर्म तथा पाप का विस्तार हुआ है, तब-तब मैं साधु-पुरुषों की रक्षा, दुष्टों का नाश तथा धर्म की स्थापना के लिए आता हूँ।
दशम पातशाह गुरु गोबिंद सिंह जी ने भी कहा है :-

जाइ तहां ते धरम चलाए
कबुध करन ते लोक हटाए ।।

ऐसी ही विषम परिस्थितियों में पन्द्रहवीं शताब्दी में धरती पर बढ़ रहे जुल्म एवं अन्याय को रोकने के लिए श्री गुरु रविदास जी को अवतार धारण करना पड़ा ।

सद्गुरु रविदास जी का जन्म 1433 विक्रमी माघ सुदी पूर्णिमा को वाराणसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ । कई इतिहासकार आपका जन्म आषाढ़ माह की संक्रांति को भी बताते हैं और अन्य कई

इतिहासकार आप जी के जन्म के बारे में भिन्न-भिन्न समय का वर्णन करते हैं, जिनका संक्षिप्त ब्यौरा निम्नलिखित है :

1. पंजाबी स्रोत :

a. ज्ञानी बरकत सिंह आनंद
(जन्म साखी भगत रविदास)
प्रविष्टा 11, सन् 1471
b. मगू राम बहडूवालिया (श्री गुरु रविदास मिशन)
माघ पूर्णिमा 1456 वि. सम्वत्
ज्ञा. काला सिंह नामधारिया
(जन्म साखी भगत रविदास जी की)
1 आषाढ़, 1471 वि. सम्वत्
c. श्री जसवंत सिंह उर्फ जमना दास
श्री रविदास प्रकाश)
1 हाड़ 1456 वि. सम्वत्
d. श्री अमर सिंह परदेसी
(श्री रविदास भगत जीवन कथा)
1471 विक्रमी सम्वत्
e. श्री काशी नाथ उपाध्याय
(गुरु रविदास)
1433 ई.
f. डॉ. लेखराज परवाना
(श्री गुरु रविदास - जीवन ते किरतां)
माघ पूर्णिमा, 1433 सम्वत्
g. डॉ. जसबीर सिंह सावर
(भगत रविदास स्रोत पुस्तक)
माघ पूर्णिमा 1433 वि. सम्वत्
h. डॉ. कर्म सिंह
(हउ बणजारो राम को)
माघ पूर्णिमा 1433 वि. सम्वत्
i. डॉ. कृष्णा कलसिया
(गुरु रविदास रूप-सरूप)
माघ पूर्णिमा 1433 वि. सम्वत्
j. डॉ. काहन सिंह नाभा
(श्री गुरु रविदास मिशन)
(महान कोश)
1456 वि. संवत्

2. हिंदी स्रोत :-

a. डॉ. राम कुमार वर्मा
(हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास)
1445 वि. सम्वत्

b. डॉ. धर्मपाल सैनी
(श्री गुरु ग्रंथ साहिब एक परिचय)
1500 वि. सम्वत्

c. डॉ. जोगिन्द्र सिंह
(संत रैदास)
1500 वि. सम्वत्

d. डॉ. गोबिन्द त्रिगुणायत
(हिंदी निर्गुण कविधारा)
1415 वि. सम्वत्

e. महात्मा राम चरण कुरील
(भगवान रविदास की सत्य कथा)
1415 वि. सम्वत्

f. डॉ. भागवत् मिश्र
(संत रैदास और उनका पंथ)

g. डॉ. प्रभाकर माचवे
(निर्गुण संत काव्य)
1527 वि. सम्वत्

h. डॉ. वी. पी. शर्मा
(संत गुरु रविदास वाणी)
1455-56 वि. सम्वत्

i. हिंदी शब्दकोश
1455 वि. सम्वत्

j. डॉ. संगम लाल पाण्डेय
(संत रैदास)
1450 ई०

k. आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद
(रविदास दर्शन)
1433 वि. सम्वत्

संस्थाएँ :-

1. भारत सरकार : 1433 वि. सम्वत्
2. आल इंडिया गुरु रविदास फाउन्डेशन जालंधर 1376 ई. (1433 वि.)

3. गुरु रविदास साहित्य अकेडमी, पंजाब 1376 ई. (1433 वि.)
4. गुरु रविदास चेयर, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ 1376 ई. (1433 वि.)
5. गुरु रविदास चेयर, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर 1376 ई. (1433 वि.)
   (पावन गाथा श्री गुरु रविदास जी)

सभी विवाद तथा शंकाएं तब समाप्त हो गईं, जब श्री गुरु रविदास जी के वंश में से ही उनके पड़पौत्र संत कर्मदास जी, जो कि गुरु गोबिंद सिंह जी के पांच प्यारों में से थे और श्री धर्मदास जी के समकालीन थे, ने प्रस्तुत दोहा परिणाम स्वरूप प्रस्तुत किया :-

चौदह सौ तैंतीस की माघ सुदी पंदरास ।
दुखियों के कल्यान हित, प्रगटे श्री रविदास । ।

इसकी प्रस्तुति पृथ्वी सिंह आज़ाद ने भी अपनी पुस्तक 'रविदास दर्शन' के नंबर 72 पर की है। ज्योतिष के अनुसार भी 1433 विक्रमी माघ पूर्णिमा पृष्ठ वाले दिन ही रविवार आता है और यही कारण है कि सद्गुरु रविदास जी का नामकरण भी 'रविदास' ही रखा गया। अगर हम विद्वानों की अलग-अलग राय के अनुसार देखें तो अन्य किसी भी जन्म-तारीख के साथ रविवार और पूर्णिमा एक साथ नहीं आते। सभी शोधों के बाद यह प्रमाणित हो चुका है कि सद्गुरु रविदास जी का जन्म माघ महीने की पूर्णिमा, 1433 विक्रमी संवत् में हुआ ।

सद्गुरु रविदास जी की माता का नाम कलसां और पिता का नाम संतोख दास था। दादा कालू और दादी का नाम लखपति था । परन्तु जन्म तारीख की तरह सद्गुरु जी के माता-पिता के नामों के बारे में भी विद्वानों का एक मत नहीं है। भाई वरियाम सिंह चंदड़ ने गुरु रविदास जी के दादा का नाम 'कालू तथा दादी का नाम लखपति बताया है। इसी प्रकार ज्ञानी काला सिंह नामधारी ने दादी का नाम लखपति बताया है तथा दादा के नाम के बारे में कोई जिक्र नहीं किया । बैलवीडियार प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद के संपादक ने रविदास जी के पिता का नाम रघु तथा माता का नाम घुरबीनिया बताया है। इसी तरह महन्त जसवंत सिह सति दरबारी ने पिता का नाम रघु या राघव तथा माता का नाम घुरबीनिया बताया है।

पृथ्वी सिंह आज़ाद ने पिता का नाम रघु या राघवदास और बचपन का नाम मान दास बताया है। माता का नाम कर्मा देवी व्यक्त किया है। भविष्यपुराण के संपादक ने भी पिता का नाम मानदास दर्शाया है। इसी तरह डॉ. मनमोहन सिंह, प्रो. दर्शन सिंह, कला शुक्ला, पदमगुरचरण सिंह, हरभजन सिहं रत्न, डॉ. योगेन्द्र सिंह, स्वामी राघव दास, अखिल भारतीय रविदास महासभा के प्रधान, चन्द्रिका प्रशाद जिज्ञासु, शिव मंगल राम वैद्य, डॉ. धर्मपाल मैनी, संत मलूक दास आदि विद्वानों ने संत रविदास जी के पिता का नाम 'रघु' या राघवदास स्वीकार किया है तथा माता के दो नाम प्रस्तावित किये हैं:- एक घुरबीनिया तथा दूसरा करमा देवी। ज्ञानी बरकत सिंह आनंद, राजिन्द्र सिंह सचदेव, प्रो. प्रकाश सिंह, प्रो. पाखर सिंह तथा आल इंडिया आदि धर्म मिशन, नई दिल्ली ने सद्गुरु रविदास के पिता का नाम सन्तोखा या सन्तोखदास तथा माता का नाम कौस देवी, दयारी, कलसी (कौसा देवी) स्वीकार किये हैं।

चन्द्रिका प्रशाद जिज्ञासु ने दो शब्दों धुरबीनिया तथा घुरबीनिया को गलत प्रचलित उच्चारण का दोष मानते हुए कहा है कि वास्तव में यह नाम दघुरणिया (रघुराणी) है अर्थात रघु की पत्नी ।

गुजराती साहित्य में पिता का नाम मान दास दर्शाने की बजाये रविदास जी के गुरु का नाम मानदास बता दिया गया है।

'रैदास रामायण' के कर्ता ने रविदास जी के बुजुर्गों की दो पीढियां बताई हैं। एक के अनुसार रविदास जी के पिता का नाम राहू तथा माता का नाम करमा माना है। राहू के पिता का नाम हरिचन्द तथा माता का नाम चतुरकौर बताया गया है।

सद्गुरु महाराज जी के जन्म-स्थान संबंधी भी अनेक विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। अपनी-अपनी शोधानुसार भिन्न-भिन्न स्थानों को उन्होंने सद्गुरु का जन्म-स्थान बताया है।

शिव मंगल राम वैद्य प्रधान, भारती प्रगतिशील शोषित दलित वर्ग महासभा, मंडुआडीह, बनारस ने अपने एक खोज-पत्र में रविदास जी का जन्म स्थान मुडूआडीह सिद्ध किया है।

राधेश्याम मिश्र के पास जो हस्तलिखित वाणी संग्रह है, जो बहुत प्राचीन बताया जाता है, उस ऐतिहासिक प्रमाण के आधार पर सिद्ध होता है कि संत रविदास जी का जन्म-स्थान मंडुआडीह ही है

काशी विच्च मांडूर स्थाना।
शूद्र वर्ण करत गुजराना । ।
मांडूर नगर लीन अवतारा ।
रविदास शुभ नाम हमारा ।।

पृथ्वी सिंह आज़ाद ने रविदास जी का जन्म स्थान बनारस की प्रसिद्ध चमार बस्ती मंडुआडीह को ही माना है।

डॉ. भाई जोध सिंह ने भी गुरु रविदास जी का जन्म-स्थान मुडुआडीह ही स्वीकार किया है।

भविष्य पुराण में जो -'शंकराचार्य तथा रविदास के शास्त्रार्थ' का प्रसंग आया है, उस में शास्त्रार्थ का स्थान काशी नगर द्वार के बाहर बताया जाता है । यह नगर द्वार के बाहर शब्द मंडुआडीह की पुष्टि करता है।

काशी महात्मय में भी 'शंकराचार्य से जिस शूद्र की मुलाकात का जिक्र आता है वह स्थान मंडुआडीह ही बताया जाता है।

बैलवेडियर प्रैस इलाहाबाद ने जो रैदास जी की वाणी प्रकाशित की है, उसके संपादक ने पन्ना एक पर यह माना है कि रविदास जी बनारस में पैदा हुए थे :-

यह महात्मा भी कबीर साहिब की तरह काशी में पैदा हुए।

प्रो. दर्शन सिंह ने भी रविदास जी की जन्मभूमि लहरतारा (लहर लता) के नजदीक मंडुआडीह जो वर्तमान वाराणसी के पश्चिम की तरफ है, हुआ माना है।

कला शुक्ला ने अपनी रचना 'संत रविदास' में इस महापुरुष का जन्म-स्थान मंडूह बताया है, जिसका पहला नाम मंडुआडीह था, वाराणसी नगर के बाहर, पश्चिम की ओर एक ग्राम था। ग्राम का नाम मंडूह था। मंडूह अपने आप में बिल्कुल ग्राम ही था। इसी तरह डॉ. परशुराम चतुर्वेदी, पंडित बेनी प्रशाद शर्मा, डॉ. धर्मपाल मैनी, डॉ. जोगिन्द्र सिंह ने मंडुआडीह को ही श्री गुरु रविदास जी की जन्मभूमि बताया है ।

परन्तु सद्‌गुरु रविदास जी को मानने वाली संगत मान चुकी है कि सद्‌गुरु रविदास जी का जन्मस्थान सीरगोवर्धनपुरा है। जहां आज उनकी नामलेवा संगत सद्‌गुरु रविदास जी का एक विशाल मंदिर बना हुआ है। जिसके दर्शन करने के लिए देश-विदेश से संगत आती है।

जहां महाराज जी की जन्म तारीख, जन्म स्थान और उनके माता-पिता संबंधी अनेक मत हैं, वहां आप जी के नाम भी भिन्न-भिन्न बताए गए हैं जैसे : रैदास, रायदास, रविदास, रूईदास, रमदास इत्यादि ।

मुझे तो यह सब कुछ उस समय के पढ़े-लिखे और अपने आप को चतुर-चालाक समझने वाले वर्ग की साजिश और उनकी एक सोची समझी चाल ही नज़र आती है जिन्होंने गुरु रविदास जी के जीवन को एक पहेली बनाकर लोगों के सामने इसलिए प्रस्तुत किया ताकि उनको चाहने वाला समाज इन पहेलियों में ही उलझ कर रह जाये। गुरु जी की वाणी एवं उनके उपदेशों का समाज पर अधिक प्रभाव हो जाने पर कहीं उनका अपना सिंहासन न डोल जाये। आखिर सत्य को कब तक छिपाया जा सकता है? जिस प्रकार कहीं भी उगा चंदन का वृक्ष पूरे वन को सुगंधित किए बिना नहीं रहता, उसी प्रकार महापुरुषों के जीवन का प्रकाश अंधकार को दूर कर अपना प्रकाश दिखा ही देता है। सूर्य चाहे बादलों में छिपा हो, आखिर प्रकाश दे ही देता है। महाराज जी के जन्म और जन्मस्थान संबंधी अनेक ठोस प्रमाण प्राप्त हुए हैं, जिनमें संदेह की कोई गुंजाइश ही नहीं है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज आप जी के चालीस शबद ही प्रमाण के लिए संतोषजनक हैं।

सद्‌गुरु रविदास जी ने स्वयं अपनी वाणी में लिखा है :-
मेरी जात कुटबांढला ढोर ढोवंता नितहि बानारसी आस पासा ।।

(पंना 1283)

परन्तु प्रमाणित प्रमाण मिल जाने के पश्चात् भी शरारती तत्वों को संतोष नहीं हुआ। जब उनकी सभी साजिशें नाकामयाब सिद्ध हुईं तो उन्होंने सीर-गोवर्धनपुरा और मण्डुयाडीह की समस्या

को उत्पन्न कर दिया। कुछ ने तो गुरु जी को चमत्कारी, जादूगर आदि के रूप में प्रस्तुत कर दिया। बहुत ही चालाक और चतुर मनुवादी लेखकों ने तो यहां तक लिख दिया कि गुरु रविदास जी रामानंद के अभिशाप के कारण चमार जाति में पैदा हुए थे। ऐसे ही लेखकों में से एक ने तो यहां तक लिखा है :-

"सद्गुरु रविदास को पैदा हुए लगभग पांच दिन हो गये थे परन्तु वह बालक अपनी माँ का दूध नहीं पी रहा था और लगातार रोता ही जा रहा था। माता कलशां से बेटे का दुख सहन नहीं हो रहा था और वह दुखी हृदय से पति को कहने लगी- सुनिए ! बच्चा रोता ही जा रहा है, दूध भी नहीं पी रहा, जाकर किसी वैद्य को पूछिए कि क्या बात है? पत्नी की बात सुनकर संतोख दास किसी वैद्य को बुलाने के लिए अभी घर से थोड़ी ही दूरी पर जाते हैं कि उनकी भेंट गोसांई रामानंद जी से हो जाती है। पिता संतोख दास ने दोनों हाथ जोड़ कर उनको नमस्कार किया और बताया कि हमारे घर एक बच्चे ने जन्म लिया है। लेकिन आज पांच दिन के बाद भी वह दूध नहीं पी रहा, बच्चा रोता ही जा रहा है।

~~स्वामी रामानंद जी ने ध्यान लगाकर देखा कि यह बालक तो वह ब्रह्मचारी है, जिसे मैंने चमार के घर जन्म लेने का अभिशाप दिया था।~~

~~उन्होंने समाधि खोली और संतोख दास को कहने लगे कि आपका बच्चा तो महान आत्मा है। मैं आपके साथ चलता हूँ। वह दूध अवश्य पियेगा। घर पहुँच कर स्वामी रामानंद जी ने बच्चे को देखा। उससे नजर मिलाई और कहने लगे कि आपको दूध पीना ही पड़ेगा। रामानंद की आवाज सुनकर बालक शांत हो गया और माँ का दूध पीने लगा। जब स्वामी जी वापस अपने आश्रम में लौटे तो एक शिष्य उनसे पूछने लगा, 'स्वामी जी! यह बच्चा कौन सी शक्ति है जो आपका दर्शन पाते ही शांत हो गया और दूध भी पीने लगा। स्वामी रामानंद जी ने बताया कि यह पिछले जन्म में उनका शिष्य था जो प्रतिदिन भिक्षा मांगकर मुझे भोजन करवाता था। एक दिन वह भिक्षा मांग कर भोजन लाया। मैंने उस भोजन को खा लिया और प्रभु-सिमरन पर बैठ गया। लेकिन मेरा ध्यान प्रभु की ओर न लगा। जब मैं सिमरन से उठा तो मैंने उस ब्रह्मचारी शिष्य को अपने पास बुलाया। पूछा कि आज का भोजन तुम कहां से लाए थे, जिसे खाने से मेरा ध्यान सिमरन में बिल्कुल नहीं लगा। ब्रह्मचारी ने नम्रता सहित उत्तर दिया, 'स्वामी जी ! जब मैं भिक्षा मांगकर आ रहा था तो वर्षा हो रही थी और मेरा पांव बनिए की दुकान के पास फिसल गया। सारा आटा नीचे गिर गया। मैं सोच में पड़ गया कि अब मैं क्या करूँ? मुझे चिंता में डूबा देखकर बनिए ने अपनी दुकान से आटा दे दिया। उसी का भोजन आप जी को करवाया था। स्वामी जी ने ब्रह्मचारी को कहा कि बनिए से पूछकर आओ कि उसने आटा किससे लिया था? पता करने पर मालूम हुआ कि एक चमार के घर लड़के ने जन्म लिया था और उसने यह आटा अपनी खुशी से दाई (नर्स) को दिया था। आटे को दाई ने बनिये की दुकान पर बेचा। यह सब कुछ सुनकर स्वामी रामानंद जी क्रोधित हो उठे और कहने लगे कि तुमने मुझे चमार के घर का आटा खिलाकर मेरा जन्म भ्रष्ट कर दिया है। अब मैं तुम्हें अभिशाप देता हूँ कि तुम भी किसी चमार के घर जन्म लोगे। इसी अभिशाप के कारण उस ब्रह्मचारी ने पिता संतोख के घर रविदास के रूप में जन्म लिया।"~~

इस प्रकार की मनघड़न्त कहानियाँ लिखकर लेखकों ने एक तीर से तीन निशाने साधने की कोशिश की है।

पहला तो यह कि कोई भी महान योद्धा, क्रांतिकारी, संत, भक्त, शूद्र जाति से नहीं हो सकता, केवल ब्राह्मण ही हो सकता है।

दूसरा - बुरे कर्मों सदका ही जीव नीच जाति में जन्म लेता है ।

तीसरा - जाति व्यवस्था प्रकृति की देन है।

परंतु ये सभी धारणाएं, यह सभी बातें निराधार हैं। अगर जाति प्रथा प्रकृति की देन होती तो किसी की भी जाति का पता उसके पूछने पर या सर्टीफिकेट देखने से ही न होता, बल्कि उस की शक्ल, रंग, रूप देखकर ही पता लगा जाता कि वह किस जाति से है ।

श्री गुरु नानक देव जी ने तो अमीर मलिक भागों के पकवान छोड़ कर गरीब बढ़ई भाई लालो की रूखी-सूखी रोटी जो उसकी मेहनत की कमाई थी, को खाना स्वीकार किया था, पर रामानंद जी को यही मेहनत से कमाई हुई रोटी भ्रष्ट कैसे कर सकती है? इससे स्पष्ट होता है कि सदियों से ही दलितों के साथ अन्याय होता चला आ रहा है। सत्ताधारी वर्ग दलितों के इतिहास को अपनी इच्छानुसार तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करते आ रहे हैं. दलित वर्ग में पैदा हुए महापुरुषों के जीवन को पेचीदा बनाकर पेश करते आ रहे हैं। अतः मेरा श्री गुरु रविदास विचारधारा को प्रस्तुत करने वाले सभी लेखकों एवं पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वे सद्गुरु रविदास महाराज जी के जन्म, जन्म-स्थान, माता का नाम, पिता का नाम निम्न अनुसार ही लिखें, ताकि पाठक और श्रद्धालु किसी प्रकार की उलझन में न रहें।

जन्म स्थान	सीरगोवर्धनपुरा (बनारस)
माता का नाम	कलसां
पिता का नाम	संतोख दास

बाल लीलाएं

सद्गुरु रविदास जी के चेहरे का तेज़ बाल्यावस्था में ही इतना उज्ज्वल था कि कोई भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। प्रत्येक व्यक्ति उनके दर्शन करने की लालसा रखता । रब्बी नूर, चेहरे पर अनुपम लालिमा, आँखों में सुरूर, होठों पर इलाही मुस्कान, शांत मुद्रा आदि दिव्यगुण उन्हें अन्य बच्चों से अलग कर देते थे। आप जी के बचपन की यह विलक्षणता सभी को मोह लेती थी।

आपकी बाल लीलाओं को देखकर मन में सुखद संतोष की गरिमा उत्पन्न हो जाती। ऐसे द्वितीय बाल्यरूप के दर्शन उच्चवर्ग से संबंधित लोग भी करना चाहते थे। समाज में उच्चवर्ग के लोगों में चाहे रविदास - दर्शन कर भ्रष्ट होने की आशंका बनी रहती थी तो भी उनकी अन्तःचेतना इस बालक के रूप-सौन्दर्य की चर्चा सुनकर इस दिव्य ज्योति के दर्शन किए बिना न रहती। माता कलसां भी ऐसी निराली ज्योति को पाकर बहुत प्रसन्न थीं।

वह अपने इस लाडले को जी भर कर देखती भी नहीं थीं ताकि उसे स्वयं की नज़र न लग जाए। वह नहीं जानती थी कि उनके कुल का यह दीपक एक दिन अवश्य के नाम को रौशन करेगा, गरीबों का सहारा बनेगा, दलितों का मसीहा बनेगा। वह क्या जानें कि उनकी गोद में पल रहा यह घर का चिराग दुनिया में सूरज (रवि) बनकर चमकेगा। घर के आंगन में खेलते-कूदते, उठते-बैठते जब रविदास जी चार वर्ष के हुए तो आप ने अपने संगी-साथियों के साथ खेलना आरंभ कर दिया, किंतु आपकी खेलें अन्य सामान्य बच्चों से निराली होतीं।

सभी छोटे-छोटे बच्चों को अपने आस-पास बिठाकर उन्हें ज्ञान की बातें सुनाते, छोटे मुंह से तोतली बोली में बड़ी-बड़ी बातें सुनकर माता-पिता दंग रह जाते। दूसरे बच्चे भी रविदास जी की बातों को कान लगाकर सुनते और उन पर चिंतन-मनन करते। किंतु वे बच्चे जिस समाज में पल रहे थे वह समाज उन्हें एक शूद्र के साथ खेलने की स्वीकृति किसी भी कीमत पर नही देता था। इसलिए बच्चे अपने संस्कारों के अनुसार रविदास जी से अलग रहने की कोशिश करते। एक बार इन्हीं बच्चों ने रविदास जी से कहा कि रविदास अगर तुम भगवान के प्रिय हो तो हमें भगवान का दिया हुआ प्रशाद तो खिलाओ।

रविदास जी ने मिट्टी के ढेले को लड्डू का आकार दिया और जब मुठ्ठी खोली तो उस में सचमुच ही लड्डू निकला। इस प्रकार रविदास जी ने सभी बच्चों को वह मिठाई बांट दी, परंतु एक बालक जो बहुत हठी था, उसने सब बच्चों को मिठाई खाने से मना कर दिया और कहा :
खाइए, खाइए,

चमार के हाथों से ज़रूर खाइये,
हिंदु धर्म छोड़ कर चमार हो जाइये ।
बतायेंगे घर-घर समाज को बातें नमूना,
मनु जी कहते शूद्र को बिल्कुल नहीं छूना ।

भाव हिंदु धर्म केवल कुछ लोगों के हाथ में ही था । शूद्र को छूना तक हिंदु धर्म के विपरीत था । अगर कोई शूद्र के हाथ का खा लेता तो इसकी चर्चा पूरे समाज में भीषण रूप धारण कर लेती। शूद्र का दिया खाने वाले को अपराधी समझा जाता । परंतु सद्‌गुरु रविदास जी की लीलाएं इसी प्रकार चलती रहीं । न जाने सद्‌गुरु रविदास के गूढ़ ज्ञान की ये रहस्यमयी बातें बच्चों की समझ में आती भी थीं या नहीं । प्रभु-नाम की महिमा सुनकर कई बार नन्हें साथी सद्‌गुरु रविदास से प्रश्न करते कि रविदास! तूने तो उस प्रभु को देखा होगा, हमें भी बताइए कि वह कहां रहता है? देखने में कैसा है? हमें भी उस मालिक के दर्शन करवा दो। ऐसे प्रश्नों को सुनकर सद्‌गुरु रविदास जी और भी गंभीर हो जाते। अपने साथियों से अलग होकर एकांत में बैठकर प्रभु-भक्ति में लीन हो जाते। समाज में रहकर भी वे कमल की भांति इससे निर्लिप्त रहते, चित्त प्रभु की याद में लगा रहता। हर श्वास में मालिक के नाम का सिमरन करते। इस तरह शांत-चित्त होकर चिंतन में डूबे अपने नन्हे बालक को देखकर माता-पिता फूले न समाते। वे जानते थे कि हमारा बेटा होनहार है। झूठी खेलों में इसका मन नहीं रमता, उसकी खेलें तो केवल प्रभु ही जानता है। काशी की गलियों में खेल-कूदकर जब रविदास जी छह-सात वर्ष के हुए तो पिता संतोख जी सद्‌गुरु रविदास के अनूठे बचपन को देख कर माता कलसां से पूछने लगे कि क्या तुमने भी कभी बेटे को परखा है या केवल मुझे ही ऐसा अहसास होता है।

मुझे तो यह बालक कोई इलाही स्वरूप नज़र आता है। छोटी सी उम्र में इतनी ज्ञान भरी बातें जब कोई भी सुनता है, तो दांतों तले अंगुलि दबा लेता है। हे भाग्यवान! मैं सोचता हूं कि यदि किसी प्रकार इसे स्कूली विद्‌या भी दिला दी जाये तो सोने पर सुहागा हो जायेगा। इसकी तीव्र बुद्‌धि को चार चाँद लग जायेंगे। हमारा यह दीपक समाज में ऊँचा पद प्राप्त करेगा।

स्कूली शिक्षा एवं गुरमुखी लिपि
नाना खिआन पुरान बेद विधि चउतीस अखर माही

चाहे उस समय चमार जाति को पिछड़ी श्रेणी में रखा गया था। उसके लिए शिक्षा के सभी द्वार बंद कर दिये गये थे, फिर भी यह जाति ऐसे कार्यों में संलग्न थी कि समाज के अन्य वर्गों का इस जाति के बिना आत्मनिर्भर होना असंभव था। उसके स्पर्श से उच्च वर्ग के लोग अपने को भ्रष्ट हुआ समझते थे पर इस चमार वर्ग के द्वारा बनाई गई बहुत अधिक दस्तकारी की वस्तुओं के बिना उनका गुज़ारा असंभव था। यह जाति चमड़े का काम करती थी और इस चमड़े से अनेक वस्तुएं तैयार की जातीं, जिनकी ज़रूरत प्रत्येक व्यक्ति को सदैव रहती थी, चाहे वह कितने भी ऊँचे वर्ग से संबंध क्यों न रखता हो। अपनी वैज्ञानिक सूझ और कर्मनिष्ठा से ये लोग चमड़े के पर्स, पेटी, जूते आदि तैयार करते। पहले लोग वस्त्र भी चमड़े के ही पहनते थे। चमड़े पर लिखने का कार्य भी किया जाता था। यही कारण है कि इस वर्ग का संबंध समाज के अन्य सभी वर्गों के साथ बना रहता था। अतः उनके गुण-अवगुणों से पिछडा वर्ग भली-भांति परिचित था।

उच्च वर्ग द्वारा नीच कहलाई जाने वाली इस चमार जाति की सोच आदिकाल से ही उच्च एवं हान रही है। भले ही उसकी सोच का समाज द्वारा उचित उपयोग नहीं किया गया। सदैव उनकी सोच को दबाने का ही प्रयास किया जाता रहा । मरे हुए पशुओं के चमड़े को वैज्ञानिक विधि से उतार कर उस कच्चे चमड़े की बदबू को समाप्त किया जाता। फिर उसे अच्छी तरह साफ कर लिया जाता। चमड़े को प्रयोग में लाने के लिए उसे पतली परतों में ढाल कर अनेक पक्के रंग चढ़ाये जाते और बाद में उससे कीमती सामान शिल्पकारी से तैयार किया जाता। मानसिक योग्यता और शारीरिक मेहनत के सांचे में ढालकर शिल्पकार समाज की जरूरतों का सामान तैयार करता और वह भी मरे हुए बेकार पशुओं की चमड़ी से।

यह सब चमार लोगों की प्रतिभा का ही तो प्रमाण है। कर्म को ही वे पूजा समझते थे। आज भी यह पिछड़ा वर्ग आर्थिक रूप से चाहे कुछ कमज़ोर है लेकिन उसके पास बुद्धि-विवेक का अमूल्य खज़ाना है जिससे वह अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करता है । स्वाबलम्बन का जीवन व्यतीत करता है। सद्गुरु रविदास जी भी इसी वंश के जन्मदाता थे।

आप जी के पिता संतोख भी अपने बच्चे की शिक्षा के प्रति पहले से ही सजग थे। इसी उद्देश्य से वे अपने पुत्र रविदास को पण्डित श्रद्धानंद के पास पढ़ाने के लिए ले गये लेकिन पण्डित ने समकालीन सामाजिक वर्ण-व्यवस्था के कारण निम्न जाति में पैदा हुए बालक रविदास को शिक्षा देने से मना कर दिया। पिता संतोख जी ने पण्डित को नम्रता सहित प्रार्थना की और कई तरह के प्रलोभन दिए । आखिर पिता की प्रबल इच्छा, उसकी सेवायें और बालक रविदास के भव्य रूप ने पंडित को शिक्षा देने के लिए विवश कर दिया। वह उसे तालीम देने के लिए राज़ी हो गया। अगले ही दिन सद्गुरु रविदास जी पढ़ने के लिए पण्डित के पास गए । पण्डित ने उन्हें बाकी बच्चों से अलग बिठा दिया और एक लम्बी छड़ी से उस बालक को दूर से ही पढ़ाने लगे।

बालक रविदास को यह सब अच्छा न लगा। आप जी ने ऐसी शिक्षा पाने से इनकार कर दिया। पढ़ाई छोड़ दी, जिससे पिता संतोख को अपनी सारी कल्पनाएँ मिट्टी में मिलती हुई दिखाई

देने लगीं। परेशान हृदय से कहने लगे, 'बेटा! किसी भी तरह आप पण्डित से शिक्षा हासिल कर लेते तो इसमें तेरी ही भलाई थी। ज्ञान-प्राप्ति के लिए यदि कुछ त्याग भी करना पड़े तो कर देना चाहिए। चिंतित और उदास पिता को देखकर रविदास जी विनम्र भाव से बोले- 'पिता जी! आपकी चिंता व्यर्थ है।

मैं पढ़ूंगा लेकिन अपने बलबूते पर स्वयं अध्ययन कर ऐसी शिक्षा प्राप्त करूंगा जिस के पाने और फैलाने से समाज में पड़ी ऊँच-नीच की सभी दीवारें ढह ढेरी हो जायेंगी, समाज में समानता फैलेगी, वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होगी । इसी दृढ़ निश्चय एवं संकल्प के कारण आप जी ने नई लिपि तैयार की जिसे आज गुरमुखी लिपि के नाम से जाना जाता है। (देवनागरी लिपि प्राचीन लिपि है)।

जब विदेशी जातियां आर्य लोग भारत में आये तो उन्होंने एकता के सूत्र में बंधे एक ही वर्ग के समाज को चार वर्णों में बांट दिया। विद्या पढ़ने-पढ़ाने का काम उन्होंने अपने हाथ में ले लिया । निःसन्देह क्षत्रियों को उन्होंने शिक्षित किया लेकिन शिक्षा की मूल बारीकियों का ज्ञान उन्हें न दिया । वे शिक्षा के मूल रूप और इसके विकास को न समझ पाये। शूद्र वर्ग को तो विद्या के नाम से भी दूर रखा गया। अगर कोई ऐसे कानून की उल्लंघना करता तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता। फलतः यह वर्ग शिक्षा के क्षेत्र में पिछड गया और इसकी बोलचाल की भाषा में रूखापन आ गया। दूरदर्शी सोच के मालिक सद्गुरु रविदास ने यह अनुभव किया कि यदि यह वर्ग विद्या से वंचित ही रहता गया तो समाज के अन्य वर्गों से बहुत पिछड़ जायेगा। क्यों न इसकी बोली के अनुरूप ही कोई ऐसी लिपि तैयार की जाये जिस के माध् यम से यह शिक्षा ग्रहण कर सकें। समयानुसार उसे पढ़ सके।

महाराज जी का विश्वास था कि विद्या के बिना व्यक्ति विवेकहीन हो जाता है। उसका विवेक रूपी दीया धुंधला हो जाता है। अतः विद्या से ही इस अज्ञानता रूपी अंधकार को दूर किया जा सकता है ।

सद्गुरु रविदास जी ने अपनी वाणी में लिखा

माधो अबिदिया हित कीन
बिबेक दीप मलीन ।।

व्यक्ति की सच्ची स्वतन्त्रता विदया प्राप्ति में ही है। शिक्षा ही हमें गुलामी की जंजीरों तथा शोषण से बचाती है। सद्गुरु यह जानते थे कि जब कोई व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर चालाक वर्ग की चालाकियों को पढ़ने एवं समझने में सक्षम हो जाता है और जब वह एक कोरे कागज़ पर अंगूठा लगाने से इनकार कर देता है, तब होता है एक विस्फोट, क्रांति। जिसकी गूंज व लौ को दूर-दूर तक अनुभव किया जा सकता है। फिर जन्म होता है एक सच्चे मानव का, स्वतंत्र और आत्मनिर्भर मानव का और इसी के साथ वह मानव लेता है एक नई अंगड़ाई, एक नई दिशा, एक नया मोड़। कहा जाता है कि दिशा बदल जाने से दशा बदल जाती है।

यही सोच लेकर सद्गुरु रविदास जी और समकालीन संत महापुरुषों ने बावन अक्षरी देवनागरी लिपि को सुधार कर गुरमुखी लिपि तैयार की । सामान्य लोगों की भाषा के अनुसार चौंतीस अक्षरों

वाली यह लिपि बाद में गुरमुखी लिपि के नाम से प्रसिद्ध हुई । इसकी पुष्टि प्रो. लाल सिंह ने भी अपनी पुस्तक 'बाणी श्री गुरु रविदास जी और तत सिद्धांत' में भी की है।

कुछ विद्वानों का मत है कि गुरमुखी लिपि श्री गुरु अंगद देव जी की देन है, पर उनका यह मत निराधार है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज गुरु अंगद देव जी की वाणी में कहीं भी इसका उल्लेख नहीं आता पर सद्गुरु रविदास जी की प्रमाणित वाणी में इसका स्पष्ट उल्लेख है ।

चल मन हरि टकसाल पढ़ाऊ ।
प्रेम की घाटी सुरति की लेखनि करिहौं
रारा-मम्मा लिख अंक दिखाऊ ।।

यह शबद गुरु रविदास चेयर पंजाब यूनिवर्सिटी चण्डीगढ़ द्वारा प्रकाशित 'बाणी श्री गुरु रविदास जी के पृष्ठ नंबर 38 और शबद नंबर 92 में दर्ज है । एक बात यहां और भी स्पष्ट हो जाती है कि गुरु रविदास जी देवनागरी के बावन अक्षरों को मान्यता नहीं देते बल्कि उन्होंने समूचा संस्कृत साहित्य चौंतीस अक्षरों में लिखा, ही दृढ़ किया है। दूसरा -आप जी की वाणी में ररा, मम्मा, सस्सा अक्षर यह स्पष्ट करते हैं कि गुरमुखी लिपि का आरंभ श्री गुरु अंगद देव जी से पहले ही हो चुका था । श्री गुरु रविदास महाराज जी ने लिखा है:-

सुखसागर सुरितरु चिंतामनि कामधैन बसि जाके रे ।
चारि पदारथ असट महा सिधि, नवनिधि करतल ता कै ।।१।।
हरि हरि हरि न जपसि रसना ।
अवर सभ छाडि बचन रचना । ।१ । । रहाउ ।।
नाना खिआन पुरान बेद विधि
चउतीस अछर माही ।
बिआस बीचारि कहिओ
परमारथु राम राम सरि नाही ।। २ ।।
सहज समाधि उपाधि रहत होइ बडे भागि लिव लागी ।
कहि रविदास उदास दास मति
जनम मरन भै भागी । । ३ । । २ । । १५ ।।

(आदि ग्रन्थ पन्ना 1106)

इस प्रकार हम देखते हैं कि सद्गुरु रविदास जी ने नियमबद्ध सैद्धांतिक चौंतीस अक्षरों की लिपि तैयार करके भाषा - विज्ञानी होने का प्रमाण दिया और लोगों को अपनी बोली में शिक्षा प्रदान करने के दवार खोलकर सामाजिक समता का सफल प्रयास किया ।

जीवन दान देना

निःसंदेह संत महापुरुष चमत्कारी दुनिया में विश्वास नहीं रखते और न ही ऐसी चमत्कृत मायावी दुनिया दिखाकर लोगों को भ्रमित ही करते हैं । सच्चे और पूर्ण सन्त तो केवल एक ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास रखते हैं, उसी परम शक्ति की पूजा करते और श्वास-श्वास में प्रभु का शुक्रिया करते हैं । लोगों को भी उस मालिक के नाम का सिमरन करने की प्रेरणा देते हैं। सहज भक्ति का संदेश देकर उन्हें बाहरी आडम्बरों, जादू-टूने, तंत्र-मंत्र आदि से बचने के लिए कहते हैं। उनके अनुसार प्रभु सर्वशक्तिमान है और सर्वव्यापक है। वह निराकार है, निर्गुण है। उसकी तुलना किसी भी अन्य देवी-देवते से नहीं की जा सकती और न ही हम किसी भौतिक सामग्री से ही उस मालिक को खुश कर सकते हैं लेकिन कई बार ऐसा चमत्कार अचानक ही घटित हो जाता है जिसे कभी सोचा भी नहीं होता। यह सब उस मालिक की कृपा से ही होता है पर साधन कोई अन्य जीव-प्राणी बन जाता है। ऐसी ही एक घटना का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है जो सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के जीवन के साथ जुड़ी हुई है और यह घटना स्वाभाविक रूप से घटी लेकिन किसी भी बड़े (असम्भव) चमत्कार से कम नहीं ।

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी बचपन में अपने साथियों के साथ खेला करते थे। प्रतिदिन बच्चे नाना प्रकार के खेल खेलकर हँसी-खुशी अपना बचपन गुज़ारते। उन साथियों में से एक का नाम "जीवन" था। उन सभी बच्चों के दवारा एक दिन कुछ ऐसा खेल खेला जा रहा था जिसमें सभी बच्चों के देवक-एक करके बारी आ रही थी। जब जीवन की बारी आई तो साथिको समय हो चुका था, थोड़ा-थोड़ा अन्धेरा हो जाने के कारण जीवन शामधारी को टाल दिया गया और यह निर्णय ले लिया गया कि अब जीवन की बारपने खेल की बारी निभाएगा। यह कहकर सभी अपने-अपने घर चले गए। जीवन भी अपने घर चला गया ।

जीवनक उसी रात्रि "जीवन" सदा की नींद सो गया। ऐसी नींद सोया कि सुबह उठ ही न पाया। सुबह हुई तो प्रतिदिन की भाँति जीवन के साथी कि सुग्घर उसे बुलाने गए तांकि वह खेल की अपनी बारी दे सके। जब जयगुरु रविदास जी अन्य बच्चों सहित वहाँ गए तो उन्होंने देखा कि जीवन के माता-पिता की उदास आँखों से नीर टपक रहा था। बहुत से रिश्तेदार कैथा पड़ोसी भी उनके घर चुपचाप बैठे हुए थे। घर मे सन्नाटा छाया हुआ बा, जीवन चारपाई पर लेटा हुआ था।

सद्‌गुरु रविदास जी के साथी बच्चे थोरले. माता जी! जीवन अभी तक उठा नहीं, क्या बात है?' माता जी ने उत्तर दिया कि बेटा! जीवन तो इस संसार से चला गया है। सद्‌गुरु ने देखा कि पुत्र वियोग में माता-पिता बहुत दुखी हो रहे हैं। ऊँची-ऊँची रोना और उनकी करूणा भरी आवाज़ सद्‌गुरु जी के लिए भी असहनीय हो गई पर कुदरत के आगे किसका ज़ोर चलता है। जब माता-पिता ने कहा कि अब हम किसे पुकारेंगे, आप के साथ कौन खेलेगा? तो सद्‌गुरु जी के मुखारबिंद से आकस्मिक निकल पड़ा-माँ, आप ऐसे क्यों रो रहे हो? जीवन हमारा साथी है। वह हमें छोड़ कर कहीं नहीं जा सकता। अभी तो उसने अपने खेल की बारी भी देनी है। शायद अपनी बारी के डर से वह उठ नहीं रहा और नींद का बहाना बनाकर सो रहा है। सद्‌गुरु जी ने अपना पाँव आगे बढ़ाया और उसने जीवन के शरीर पर पड़ी चादर को हटा दिया। उसकी बाजु पकड़ी और कहा- "जीवन! उठो, अपनी बारी दो।

आपका कोई भी बहाना आज नहीं चलने वाला। तुम्हें अपनी बारी देनी ही होगी। जब ज़ोर से सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने उसे उठाया तो प्रभु की ऐसी कृपा हुई कि जीवन खड़ा हो गया। आँखे मलता हुआ जीवन अपने साथियों से कहने लगा-'यार ! आज मैं बड़ी गहरी नींद में सो गया था, मुझे पता ही नहीं चला कि कब रात बीत गई और कब दिन निकल आया। जीवन को जीवित देख सभी हैरान रह गए ।

सभी कहने लगे कि जीवन तो मर चुका था। आज तक हमने कभी मृतक को जीवित होते नहीं देखा। पता नहीं यह कौन सा करिश्मा हुआ है? सद्‌गुरु रविदास ने न जाने कौन सा करिश्मा कर उसे मौत के मुँह से बचा कर नया जीवन दिया है। सद्‌गुरु जी की जय-जयकार होने लगी। जीवन के माता-पिता ने सद्‌गुरु को गले लगा लिया और आशीर्वाद दिया। कहने लगे, रविदास बेटा! आप तो हमारे लिए अवतार बनकर आए हो। हम आप के ऋणि हैं और उस मालिक का शुक्रगुज़ार करते हैं जिस ने आपको हमारे घर भेजा है। आप ने 'जीवन' को जीवन दान दिया है। सद्‌गुरु स्वयं हैरान थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मालिक की बन्दगी करने वाले स्वयं उस मालिक का रूप हो जाते हैं और फिर उनके मुख से निकला प्रत्येक शब्द उस मालिक की आवाज़ बन जाता है।

सच्चा व्यापार

हउ बनजारो राम को
सहज करउ ब्यापारु

सद्गुरु रविदास महाराज जी जब युवावस्था में पहुँच गए तो आप जी की सोच पहले से बहुत अधिक परिपक्व हो गई। आस-पास के समाज में फैली रूढ़िवादिता, असमानता, अशांति आदि को देखकर आप जी चिन्तन में डूबे रहते। मानवता के पुजारी सद्गुरु रविदास जी सदैव इसी सोच में रहते कि इस समाज में समता और स्वतन्त्रता कैसे लाई जा सके? सभी को प्रभु नाम की सच्ची कमाई से कैसे जोड़ा जा सके? मायावी जाल में से लोगों को कैसे निकाला जा सके? क्योंकि उस समय लोग अपने सच्चे मार्ग को भूल चुके थे। धर्म को एक व्यापार ना दिया हुआ था।

यदि कोई प्रभु के नाम की बात करता था, दुनिया की नश्वरता की बात करता तो धर्म के ठेकेदार उसे मूर्ख की संज्ञा देते और उसे कठोर दण्ड भी भुगतना पड़ता। गुरु जी ऐसा मार्ग निकालना चाहते थे जिससे लोगों की सोच में शांतिपूर्वक परिर्वतन लाया जा सके। आप जी के पिता श्री संतोख जी अपने इकलौते पुत्र को सोच में डूबे देखकर परेशान रहने लगे। मन में कई तरह के प्रश्न उठते थे।

पिता संतोख की चिन्ता बढ़ती गई। लोग क्या सोचेंगे? एक बेटा और वह भी बेकार, बिना कारोबार के। ऐसे इसका विवाह भी नहीं हो पाएगा।

दुनियां में रहकर इसे कोई तो कारोबार करना ही पड़ेगा। इसी सोच में डूबे हुए पिता संतोख एक दिन घर से बाहर निकले तो देखा कि एक खुले मैदान में बैठे कुछ व्यापारी अपने पैसों का हिसाब-किताब कर रहे थे। पहले समय में लोग दुकानों पर बैठ कर व्यापार नहीं किया करते थे और न ही बड़े-बड़े गोदाम हुआ करते थे। बल्कि व्यापारी लोग बैलों और घोड़ों में सामान लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान बेचने जाया करते थे। नगर-नगर, गाँव-गाँव में जाकर अपनी चीजें बेचते थे। इसी तरह के व्यापारियों का वह काफिला बनारस के पास एक खुले स्थान पर बैठकर पैसों का हिसाब कर रहा था। पैसों का ढेर देखकर पिता संतोख के मन में आया कि इन व्यापारियों के माँ-बाप कितने भाग्यशाली हैं जिन्होंने व्यापार करके इतना ज्यादा धन इक्टठा किया है। कितना अच्छा लगे अगर मेरा बेटा भी यह व्यापार करना सीख जाए और हमारे पास भी इतना धन हो जाए जिससे हमारी ग़रीबी कट जाए। घर पहुँचकर पिता ने पुत्र को समझाया, 'बेटा! अब मेरी बात ध्यान से सुनना। तुझे मैंने पढने के लिए भेजा था पर तुमने पढ़ाई नहीं की। अगर चमड़े के काम में लगाया तो भी तुझे काम करना नहीं आया। अब मैं तुम्हें जिस व्यापार के लिए कह रहा हूँ, उसे ध्यान से समझ और उस व्यापार में अपना मन लगा। अच्छा व्यापारी बनने से हमारे पास बहुत सारा धन एकत्र हो जाएगा।

सद्गुरु रविदास महाराज जी अपने पिता की बात सुनकर कहने लगे-'पिता जी! आप किस व्यापार की बात कर रहे हो। मैं तो जन्म से व्यापार करता आ रहा हूँ। मैंने तो काफी कमाई भी कर ली है। मुझे तो इस व्यापार में आज तक कभी घाटा भी नहीं पड़ा। उस प्रभु की अपार कृपा से मैं

एक अच्छा व्यापारी बन गया हूँ, बेटे की बात सुनकर पिता संतोख दास को बहुत क्रोध आया, लेकिन गुस्सा पीकर कहने लगे कि एक तो कोई काम नहीं करता, ऊपर से झूठ बोलना भी सीख लिया? बोले, 'आप ने कौन सा व्यापार करना सीख लिया है? तुम्हारे पास कौन सा बैल है, जिस पर सौदा लाद कर तुम पहाडों पर जाते हो और कब किया यह व्यापार? तुम तो कभी घर से बाहर नहीं निकले और फिर कहाँ गई आप की कमाई?

उस समय सद्गुरु जी ने इस शब्द का उच्चारण करते हुए फरमायाः-

घट अवघट डूगर घणा।
इकु निरगुणु बैलु हमार । रमईए सिउ इक बेनती,
मेरी पूंजी राखु मुरारि । । १ । ।
को बनजारो राम को
मेरा टांडा लादिआ जाइ रे ।।१।। रहाउ ।।
हउ बनजारो राम को,
सहज करउ ब्यापारु
मै राम नाम धनु लादिआ,
बिखु लादी संसारि ।।२।। उरवार पार के दानीआ, लिखि लेहु आल पतालु ।
मोहि जम डंडु न लागई,
तजीले सरब जंजाल । । ३ । ।
जैसा रंग कसुंभ का तैसा इहु संसारु । मेरे रमईए रंगु मजीठ का
कहु रविदास चमार । । ४ । १ । ।

पिता जी! जो व्यापार मैं करता हूँ, उसके लिए मुझे न तो किसी बैल की ज़रूरत है, न किसी गाड़ी की, और न ही हमें किसी पहाड़ पर या किसी अन्य स्थान पर जाकर व्यापार करने की आवश्यकता है। मेरे पास व्यापार करने के लिए मेरा मन एक बैल है जो निर्गुण है और इसमें मैंने अपने श्वासों की पूंजी लाद रखी है और जिस पहाड़ में मैं जाता हूँ, वह पहाड़ बाहर नहीं है, बल्कि हमारी गर्दन के ऊपर वाला हिस्सा है। वह उलटे घड़े जैसा पहाड़ है। हमारे सिर की चोटी और दोनों आंखों के बीच एक ऐसा स्थान है, जहां अन्तर ध्यान लगाने से हम उस सौदागर के पास पहुँच जाते हैं, जो बिना भेदभाव के वहां पहुंचने वाले व्यापारी को नेक कमाई बख्शता है। पिता जी! आज तक मेरे इस व्यापार में मुझे कोई घाटा नहीं पड़ा और जो लोग अपने श्वासों की पूंजी को अपने मालिक को न सौंप कर व्यर्थ विकारों या चुगली-निंदा में लगा देते हैं, उनको न जाने हर रोज़ कितना घाटा पड़ता है, जिसे पूरा करने के लिए ही जीव को बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

24 हज़ार दम खरच बन्दे दा,
आमदन मूल न थीवैं
जिस बंदे नूँ इतना घाटा,
उह बंदा किस विध जीवे ।।

सद्गुरु महाराज कबीर जी भी अपनी पवित्र वाणी में मानव के श्वासों की कीमत बताते हुए लिखते हैं:-

कहिता हूँ, कहि जाति हूँ,
काहु बजावत ढोल । सवासा बिरथा जाति है
तीन लोक का मोल ।।

सद्गुरु रविदास महाराज जी अपने पिता संतोख दास जी को अपने सच्चे व्यापार के बारे में बताते हुए कहते हैं कि हम राम नाम के बनजारे सहज भक्ति का व्यापार करते हैं। ऐसे नाम के बनजारे हैं जो व्यर्थ के दिखावे, कर्मकांडों और अंधविश्वासों में न पड़कर केवल उस मालिक के नाम की आराधना करते हैं और मैंने अपने इस निर्गुण बैल के ऊपर प्रभु नाम के धन का सौदा लादा हुआ है। उसी के नाम का व्यापार करता हूँ। प्रभु नाम को खरीदने की सलाह देता हूँ। यह जो संसारी जीव भौतिक वस्तुएं एवं ही बेचता हूँ। वही मेरी स्वयं की भी कमाई है और दूसरों को भी इसी सौदे विकारों की बिख का व्यापार करते हैं, यह मुझे बिलकुल पसंद नहीं ।

मैं न तो ऐसा व्यापार करता हूँ और न ही अपने साथियों को करने की सलाह देता हूँ। जिन के पास प्रभु-नाम का धन होता है, जो ऐसा व्यापार कर लेते हैं, उनको र्मराज के चित्रगुप्त लिखारी को भी कह दिया है कि मुझे कभी भी यमदूतों जन्म-मरण का दंड नहीं भुगतना पड़ता। इसीलिए पिताजी! मैंने तो उस ६ की मार नहीं सहनी पड़ेगी। संसार में रहकर भी मैं इन संसारी विषय-विकारों मुक्त हूँ ।

इस संसार का रंग तो कुसुंभी फूल की तरह है जो अधिक समय तक नहीं टिकता । दुनिया के सभी रंग, धन, दौलत, औलाद की खुशियाँ, पद, इस संसार का रंग तो कुसुंभी फूल की तरह है, जो अधिक समय तक रविदास जी कहते हैं कि मेरे मालिक के नाम का रंग मजीठ का है जिसका मान-सम्मान आदि कच्चे रंग की तरह हैं। ये सदा रहने वाले नहीं। सद्गुरु पक्का रंग जिसे एक बार चढ़ जाता है, फिर वह कभी भी उतरता नहीं। उस मालिक के नाम के रंग के सामने दुनिया के अन्य सभी रंग फीके लगते हैं। इसीलिए पिता जी! आप चिंता मत कीजिए। आप का पुत्र भी एक बहुत बड़ा व्यापारी है। उसके व्यापार की पूंजी सदैव रहने वाली है।

राम-नाम का व्यापार ही सच्चा सौदा है, उसी के नाम का जाप ही सच्चा व्यापार है और यही पूंजी सदा रहने वाली है। अतः हम सभी को उस प्रभु के नाम की भक्ति करके अपने अमूल्य मानव-जन्म को प्रभु को समर्पित कर मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए। पूरी बात को सुनकर पिता संतोख जी समझ गए कि मेरा बेटा सचमुच सच्चा सौदागर है। इस धन को न तो कोई चोर चुरा सकेगा और न ही यह खर्च करने से कम होगा, अतः यह व्यापार करने से मनुष्य का जन्म सफल हो जाता है।

परीक्षा

साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी। तुम सिउ जोरि अवर संगि तोरी ।।

"परीक्षा' शब्द का स्वरूप बहुत ही सीमित नज़र आता है लेकिन इस शब्द का अर्थ समुद्र की तरह विस्तृत एवं गहरा है और मानव जीवन के प्रत्येक क्षण में इसका प्रयोग जाने-अनजाने होता रहता है। परीक्षाओं का मानव जीवन से अटूट संबंध है। परीक्षाओं का मिश्रण ही मानव जीवन का सारांश है। समाज मानव की परीक्षा स्थली है जहाँ उसे अपने कार्यों द्वारा समाज की परीक्षाओं में सफल या असफल होना पड़ता है।

परीक्षा दो शब्दों के सुमेल से बना है :- पर+ईक्षा। "पर" का अर्थ है "दूसरा, "ईक्षा" का अर्थ है 'इच्छा'–दूसरों की इच्छा के अनुसार कार्य करना यदि मानव को किसी परीक्षा में से न गुज़रना पड़े तो यह मानव दानव का रूप धारण कर लेगा। विद्यार्थी को विद्यालय में परीक्षा देनी पड़ती है। नौकरी पाने के लिए भी कठिन परीक्षाओं में से गुज़रना पड़ता है। यह परीक्षाएं हमारी मेहनत, लगन और श्रम का मूल्यांकन करती हैं।

यदि व्यक्ति परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है तो उसे सफल घोषित कर किया जाता है। इसके विपरीत परीक्षा के अनुसार परिश्रम न करने वाला व्यक्ति असफल माना जाता है और वह अपने निर्धारित लक्ष्य को पाने में असमर्थ रहता है। ये सभी ऐसी औपचारिक परीक्षाएं हैं जिसे मानव ने सामाजिक शिक्षा का मूल्यांकन करने हेतु निर्धारित किया है। लेकिन जो व्यक्ति किसी विद्यालय में या किसी संस्था में नियमित रूप से कार्य नहीं करता या किसी डिगरी को प्राप्त करने वाली कक्षा में प्रवेश नहीं कर पाता, क्या उसे परीक्षा नहीं देनी पड़ती? क्या उसकी दिनचर्या का कोई पाठ्यक्रम नहीं होता? क्या उसके कार्यों का मूल्यांकन करने वाला कोई नहीं होता? क्या वह स्वेच्छा से ही जीता है?

नही! हम सभी को इन परीक्षाओं से भिन्न एक सर्वश्रेष्ठ परीक्षा देनी पड़ती है। वह परीक्षा है -मानव जीवन में आकर मानवीय कार्यों को करते हुए प्रभु भक्ति एवं गुरु-सेवा करना। वह परीक्षा हमारे आध्यात्मिक गुणों की होती है। जो व्यक्ति उस परीक्षा में खरा उतरता है, वही मोक्ष रूपी डिगरी प्राप्त कर जन्म मरण के चक्कर से छुटकारा पा सकता है। अन्य सभी मानवीकृत परीक्षाएं उस प्राकृतिक परीक्षा का ही एक अंश मात्र हैं। जीव को परमात्मा ने सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाकर इस ससार में भेजा है ताकि वह परमार्थ और परमपिता परमेश्वर की भक्ति कर तन-मन-धन का सही प्रयोग कर सके, समाज का कल्याण कर सके। लेकिन समाज में आकर मानव जब अपने असली उद्देश्य से भटक कर नश्वर सांसारिक वस्तुओं की चकाचौंध को अपना सब कुछ समझ बैठता है और परम-शक्ति को भूलकर स्वयं को अन्नदाता समझ लेता है तो वह मानव जीवन रूपी परीक्षा में असफल हो जाता है। उसे संसार की चौरासी लाख जोनियों के नरक में से गुज़रना पड़ता है।

यह तो सामान्य मानव की बात है, पर जब सामाजिक अत्याचार बढ़ जाते हैं, अन्याय और अत्याचार का बोलबाला बहुत अधिक होने लगता है और ऐसा लगता है मानो पृथ्वी अन्याय के बोझ से असंतुलित हो रही है, तो फिर कोई न कोई महापुरुष इस धरती पर जन्म लेता है। मध्यकालीन

युग में जब सद्‌गुरु रविदास महाराज जी को समाज में फैली अराजकता, सांप्रदायिकता, ऊँच-नीच, अधर्म आदि सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए संसार में भेजा गया तो आप जी ने बनारस की धरती पर जन्म लिया।

जैसे-जैसे आप बड़े होते गए, उनकी परीक्षाओं का दौर शुरु होता गया। भगवान ने सोचा कि जिन कर्मकांडों को दूर करने के लिए लोगों में प्यार और शांति के बीज बीजने के लिए सद्‌गुरु जी को मृत्यु-लोक में भेजा था, क्या गुरु जी के द्‌वारा वह उदेश्य पूर्ण हो रहा है या नहीं ? अपने धर्म को सद्‌गुरु ठीक ढंग से निभा भी रहे है या नहीं । कहीं ऐसा न हो कि वे भी सामाजिक मोह-माया में पड़कर अपने सब्र और संतोष के आभूषणों को उतार बैठे हों। इसी परीक्षा हेतु एक दिन भगवान एक साधु-संन्यासी के भेष में सद्‌गुरु जी की उस झोंपडी में आ पहुँचे।

जहाँ सद्‌गुरु जी अपना पैतृक व्यवसाय चमड़े का कार्य कर रहे थे। यौवन अवस्था को प्राप्त कर चुके सद्‌गुरु रविदास जी को अपने कार्य से बहुत लगाव था। कर्तव्य को निभाना ही आपका धर्म था। प्रत्येक श्वास के साथ प्रभु के नाम का सिमरन करना ही आपकी दिनचर्या थी। जब सन्यासी सद्‌गुरु जी के निवास स्थान में गरे तो सद्‌गुरु जी ने अन्य संतों की तरह उस सन्यासी को भी सम्मान सहित आसन दिया। जल-पान ग्रहण करने के बाद

सद्‌गुरु जी ने साधु से पूछा,

'मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

तो साधु बोला

“मेरा यह जोड़ा टूट गया है, मैंने इसे गँठवाना है, पर आप इसे गाँठने की क्या मज़दूरी लोगे?”

रविदास महाराज जी कहने लगे

“चाहे कोई बड़ा हो या छोटा मैं सभी से जोड़े की मुरम्मत के लिए एक कसीरा ही लेता हूँ।“

महात्मा ने पूछा- रविदास जी!

“इस प्रकार जोड़े गांठ कर कितनी कमाई कर लेते हो? इतनी कम मज़दूरी लेने के कारण ही तो तुम गरीब हो। इसी कारण इतना अच्छा मकान भी नहीं है तुम्हारे पास। परिवार का गुज़ारा कैसे चलाते हो?”

सद्‌गुरु रविदास जी कहने लगे, –

“महात्मन्! इससे मैं अपने घर-परिवार का गुज़ारा अच्छी तरह चला लेता हूँ। संतोष और सब्र की कमाई मुझे आनन्द देती है और मैं आराम की ज़िन्दगी जीता हूँ। मुझे और क्या चाहिए?”

संन्यासी बोला,

"रविदास जी ! मुझे आपकी गरीबी पर दया आ रही है। मैं तुझे एक कसीरा नहीं पारस देता हूँ, जो बहुत कीमती है। जब तुझे ज़रूरत होगी तब इससे तुम सोना बना लेना। सोना बनाकर तुम बाज़ार में बेच कर अपनी ज़रूरत पूरी कर सकते हो, बढ़िया घर बना सकते हो, जिसमें शाही-जीवन व्यतीत कर सकते हो। यह कीमती पारस कहीं मुझ से गुम न हो जाए या कोई चोर इसे न चुरा ले, इसीलिए इसे संभाल कर तुम अपने पास रख लो। मैंने अभी कई तीर्थों की यात्रा करनी है।"

सद्‌गुरु रविदास कहने लगे-

"'महात्मन्! यदि आप इस पारस को अपने पास रखने से डर रहे हो तो मुझे क्यों चिन्ता में डाल रहे हो? यदि आप ने इसे रखना ही है तो स्वयं ही झोंपड़ी में कोई ऐसा स्थान ढूंढ लीजिए, जहां यह पारस सुरक्षित रह सके और फिर स्वयं ही वहां से ले जाना। पर इसे यह पाहा ले जाना, दूसरों की अमानत को संभालना बहुत मुश्किल होता है। जलदी मुझ पर कृपा करनी, इस बोझ से मुझे शीघ्र ही मुक्त कर देना।

साधु-महात्मा ने उस कीमती पारस को झोंपड़ी में रख दिया और कहा

रविदास आप की भावना तो बहुत अच्छी है, परंतु जीवन में कुछ ऐसे अविरआ जाते हैं, जब व्यक्ति विवश होकर धन की तलाश में घूमता है, तो सयममुश्किल समय में इसका प्रयोग कर लेना।"

यह कहकर साधु यहाँ से चला गया। लम्बे समय के बाद जब वही साधु पुनः रविदास जी के निवास चलन पर आया तो सद्‌गुरु के रहन-सहन की पुरानी दशा देखकर हैरान रह साध् गया। वही संतोष, वही कर्तव्य, वही आदर-सम्मान, सारा कुछ सद्‌गुरु के शोर्य की गाथा कह रहा था । चेहरे पर कोई चिन्ता की रेखा न थी। साधु ने जल-पान ग्रहण करने के बाद सद्‌गुरु जी से पूछा कि आप को एक पारस दिया था।

सद्‌गुरु जी बोले-

"'साधु जी! आपने जहाँ रखा था वहीं पर पड़ा होगा। अन्दर जाकर भी देख लीजिए, क्योंकि मैंने तो उसे देखा भी नहीं।"

जब साधु ने पारस को उसी स्थान में पाया जहां रख कर गया था तो वह प्रसन्नचित मुद्रा में सद्‌गुरु को गले से लगा कर बोले-

"रविदास ! तुम अपनी परीक्षा में सफल हुए। जिस उद्‌देश्य की पूर्ति हेतु आप को इस पृथ्वीलोक में भेजा था, उसे पूर्ण कर आपने निःसन्देह सच्चे महापुरुष का उदाहरण प्रस्तुत किया है। "

जब सद्‌गुरु रविदास महाराज जी को यह पता चला कि साधु के रूप में स्वयं भगवान मेरे निवास स्थान में आए हैं तो आप जी ने प्रभु को अपनी बाहों में समेट लिया। भगवान अपने को छुड़ा रहे थे, लेकिन सद्‌गुरु ने उन्हें प्यार के बन्धन में इस प्रकार बाँध लिया कि अब प्रभु का छूटना मुश्किल हो गया। जब सच्चा प्रेमी अपने मालिक को अपना सब कुछ न्यौछावर कर देता है, उसके प्रेम में रंग जाता है, तो प्रभु भी उस सेवक के प्यार से छूट नहीं पाता। अचानक प्रभु अदृश्य हो गए। उस समय सद्‌गुरु रविदास जी कहने लगे कि प्रभु आप मेरी बाहों में से तो छूट गए हो लेकिन

मेरे हृदय में से आप कभी नहीं जा सकते। मेरा रोम-रोम आपका है और सभी में आपका ही वास है। शरीर कट जाने पर भी आप मुझे अपने से अलग नहीं कर सकते।

भगवान बोले –

"रविदास ! तेरी मेरे साथ कैसी प्रीति है, तुम मुझे कितना प्यार करते हो"

रविदास महाराज बोले -

"हे प्रभु! मेरी आपके संग अटूट प्रीत है । प्रत्येक अवस्था में मेरा आपके साथ सच्चा नाता है । में दुनिया के सारे बंधनों से मुक्त हूँ ।"

सद्‌गुरु रविदास महारज जी ने अपने सच्चे प्यार को इस शब्द के द्‌वारा प्रकट किया है :-

जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा ।
जउ तुम चंद तउ हम भए है चकोरा ।।१।।
माधवे तुम न तोरहु तउ हम नही तोरहि ।
तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि । । १ । रहाउ ।।
जउ तुम दीवरा तउ हम बाती ।
जउ तुम तीरथ तउ हम जाती ।।२।।
साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी।
तुम सिउ जोरि अवर संगि तोरी ।।३।।
जह जह जाउ तहा तेरी सेवा ।
तुम सो ठाकुरु अउरु न देवा ।।४।।
तुमरे भजन कटहि जम फांसा ।।
भगति हेत गावै रविदासा ।। ५ ।।५।।

गुरु रविदास जी सृष्टि के जीव और अजीव के अटूट प्रेम की उदाहरण देकर अपने प्रभु-प्रेम को अटूट बताते हैं, प्रभु को सम्बोधन करते हैं कि हे प्रभु! अगर तुम सुन्दर और हरियावल वृक्षों से भरा पहाड़ हो तो मैं उस हरियाली और वृक्षों में पनप रहे तुम्हारे स्वरूप से मुग्ध होने वाला मोर हूँ जो आपके स्वरूप को देखकर नाच उठता है। अगर तुम चाँद हो तो मैं तेरे शीतल प्रेम भरे प्रकाश में आनंदित चकोरी हूँ। इसीलिए हे प्रभु! तुम मेरे से अपना प्रेम मत तोड़ना और मैं भी आप से प्रेम नहीं तोडूंगा। तुम से तोड़ कर फिर मैं किस से प्रेम करूँगा? हे प्रभु! अगर तुम दीपक हो तो मैं उस दीये की बाती हूँ और अगर तुम तीर्थ हो तो मैं उस तीर्थ का यात्री हूँ। मैं किसी भी प्रकार से तेरे प्रेम से दूर नहीं जा सकता।

हे प्रभु! मैं तो तेरे साथ सच्ची-सुच्ची प्रीति करता हूँ। तेरी प्रीति के कारण ही मैंने दुनिया के सभी विकारों से अपना नाता तोड़ लिया है। मैं माया के जाल में से निकल गया हूँ।

जिधर भी मैं जाऊँगा और जहाँ भी मैं जाऊँगा, हे प्रभु! यह तेरा सेवक तेरी ही सेवा में हाज़िर हो कर तेरे ही गुण गाएगा क्योंकि तुम सर्वव्यापक हो। तेरे जैसा इस सृष्टि में अन्य कोई भगवान या देवता नहीं है।

हे प्रभु! तेरे गुण गाने से मनुष्य यमराज के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इसलिए, यह रविदास तेरी प्रेम-भक्ति की प्राप्ति के लिए, तेरी तारीफ-सलाह में लीन है। हे प्रभु! मुझे प्रेम-भक्ति की बख्शिश कीजिए।

गृहस्थ-जीवन

सद्गुरु रविदास महाराज जी की लगन जब प्रभु-नाम के साथ इतनी बढ़ गई कि आप दुनियादारी से बेखबर रहने लगे। तब माता-पिता ने सोचा कि अब इसका विवाह कर दिया जाए। जब इस पर गृहस्थी का बोझ पड़ेगा तो यह बंधन में बंध कर काम धंधे में लग जाएगा।

पिता संतोख दास जी तथा परिवार के सभी सदस्य चाहते थे कि सुंदर, सुशील तथा आज्ञाकारी कन्या उनकी बहु बन कर आये।

श्री राम चरण कुरील लिखते हैं कि श्री गुरु रविदास जी ने गरीबों की सेवा में घर को लुटा दिया। किसी भी गरीब को नंगे पांव चलते नहीं देख सकते थे। उसे जूते पहना कर ही जाने देते थे। मेहनत से कमाया हुआ धन यूं ही लुटता देख कर पिता संतोख दास जी दुःखी रहने लगे। श्री संतोख दास जी ने अपने ससुर श्री बारु राम जी को संदेश भेजा कि वह अपने दोहते के लिये एक सुंदर कन्या की खोज करे। श्री बारू राम भी अपने क्षेत्र के माने हुए व्यक्ति थे। उन्होंने गंगा पार के एक गांव मिर्जापुर के एक अच्छे व्यक्ति की सपुत्री कुमारी लोना जो श्री गुरु रविदास जी की हमउम्र थी, से शादी करवा दी।

पृथ्वी सिंह आज़ाद तथा अन्य कई पुस्तकों में सद्गुरु जी की पत्नी का नाम लोना देवी ही लिखा है, जब कि भाई जोध सिंह ने भगवन्ती माना है। असल बात तो यह है कि लोना देवी उन के मायके परिवार में नाम था परंतु शादी के पश्चात् ससुराल में उनका नाम भागिन देवी रखा गया था। सद्गुरु रविदास जी का विवाह पिता संतोख दास जी ने इस कारण किया ताकि वह उनके व्यापार को संभाल सकें। परंतु सद्गुरु रविदास जी का मिशन तो कुछ और ही था।

गुरु जी की पत्नी भी आप ही की तरह प्रभु-भक्ति तथा दीनों की सेवा में प्रसन्न रहती। यदि पति कहे दिन है तो वह कहतीं दिन, यदि पति कहें रात है तो रात। उसने कभी भी पलट कर नहीं देखा कि वास्तव में उस समय दिन है या रात।

विवाह बंधन के पश्चात् भी सद्गुरु रविदास जी कमल की तरह सांसारिक बंधनों से निर्लिप्त रहते। जल कितना भी बढ़ जाये कमल का फूल उतना ही ऊँचा हो जाता है। रबड़ की गेंद को जितना जोर से दबा कर फेंका जाए, उतनी ही वह ऊँची उठ कर दूर जा गिरती है। उसी प्रकार गृहस्थ जीवन को पाकर भी गुरु जी तन-मन से प्रभु साधना में लीन रहे। नाम सिमरन के प्रभाव से आप ने पांचों चोरों पर (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार) पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर ली थी।

सद्गुरु रविदास जी का अवतार विश्व का उद्धार करने के लिए हुआ था। अतः गृहस्थ जीवन आपके उद्देश्य की पूर्ति में बाधक नहीं बल्कि साधक सिद्ध हुआ। आप की जीवन-संगिनी महान पति को पाकर धन्य हो गई। उसने अनुभव किया कि मेरा पति अधिक समय तक प्रभु-भक्ति में लीन रहता है अतः वह भी प्रभु भक्ति के रंग में रंग गई। इस प्रकार वह सही अर्थों में आप जी की अर्द्धांगिनी, साध्वी व सहयोगी सिद्ध हुई।

गुरु जी की संगिनी अपने पति को साक्षात भगवान समझती और जितना वे कमाकर लाते. उसी से गुज़ारा कर सदैव संतुष्ट रहती। जिससे यह कहा जा सकता है कि सद्गुरु रविदास महाराज जी की महानता एवं भक्ति में उनकी अर्द्धांगिनी का विशेष योगदान रहा है।

सद्गुरु रविदास महाराज जी के विवाह की प्रमाणित जानकारी न मिलने के कारण आप जी की संतान के बारे में भी कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता और न ही कहीं इसका उल्लेख ही मिलता है। यह तो अवश्य माना जाता है कि सद्गुरु रविदास महाराज जी गृहस्थी थे। आप जी की संतान का उल्लेख करते हुए आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद ने अपनी रचना 'गुरु रविदास के पृष्ठ संख्या 16 पर बताया है कि 'रविदास पुराण के अनुसार आप जी का एक बेटा था, जिसका नाम विजय दास था। महंत जसवंत सिंह के अनुसार सद्गुरु रविदास जी का एक बेटा और एक बेटी थी। बेटे का नाम संत दास और बेटी का नाम संत कौर बताया है। बाबा सति दरबारी अपनी रचना 'रविदास परगास में एक पुत्र होने की बात करते हैं। लेकिन खेद की बात है कि इन सभी का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता ।

अगर सद्गुरु रविदास जी की कोई संतान होती तो कहीं न कहीं समकालीन इतिहास या उसके बाद में आप जी के साथ-साथ आपकी संतान का भी अवश्य उल्लेख होता। श्री गुरु रविदास जी ने अपने समाज को ही अपनी संतान माना है। सभी प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सद्गुरु रविदास महाराज जी ने गृहस्थ जीवन तो अवश्य अपनाया था लेकिन संतान कोई न थी।

सद्गुरु रविदास महाराज जी ने गृहस्थ जीवन अपना कर यह सिद्ध कर दिया कि व्यक्ति गृहस्थ जीवन में भी सांसारिक पदार्थों से निर्लिप्त होकर परमात्मा को प्राप्त कर सकता है ।

सद्गुरु रविदास महाराज जी के गुरु

परम परस गुरु भेटीऐ
पूरब लिखत लिलाट

'गु+रु' दो धातुओं के सुमेल से बना शब्द गुरु महिमा का ही दयोतक है।

इसका शाब्दिक अर्थ है - अंधकार को मिटा कर प्रकाश देने वाला। जो व्यक्ति, साधन एवं वस्तु हमें किसी न किसी प्रकार से ज्ञान देती है, हमारा मार्गदर्शन करती है, उसे गुरु कहा जाता है।

जब से मानव इस पृथ्वीलोक में आया है, तभी से गुरु-परंपरा भी साथ-साथ चलती आ रही है। ज़िन्दगी के हर मोड़ पर हमें कोई न कोई मार्गदर्शक मिल ही जाता है। जन्म से पहले ही हमारी माँ हमारा प्रथम गुरु बनती है। माँ के खान-पान, रहन-सहन, व्यवहार का प्रभाव जन्म से पहले ही बच्चे पर पड़ना शुरु हो जाता है जो आज प्रमाणित हो चुका है। तभी तो कहा जाता है कि गर्भवती महिलाओं को हमेशा अच्छी सोच रखनी चाहिए। पौष्टिक आहार लेना चाहिए, अच्छी पुस्तकें पढ़नी चाहिएं क्योंकि आने वाला बच्चा भी वैसे ही संस्कार ग्रहण करेगा। इतिहास साक्षी है कि अभिमन्यु ने चक्रव्यूह के छह द्वारों को भेदने का ज्ञान गर्भ अवस्था में ही प्राप्त कर लिया था।

इसी प्रकार जन्म के बाद भी मां ही समय-समय पर अबोध बालक को चलना, बोलना, खाना-पीना सिखाती है। जब बच्चा विद्यालय में प्रवेश करता है तो माता-पिता के साथ-साथ शिक्षक भी बच्चे के गुरु के रूप में कार्य करना आरंभ कर देते हैं। शिक्षक हमें अक्षर-ज्ञान और जीवन संबंधी अन्य बातों का ज्ञान देकर जीने की कला सिखाता है।

जिस प्रकार समाज में रहकर हम सामाजिक गुरुओं द्वारा अच्छा नागरिक बनने की शिक्षा ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार उस परम-पिता परमेश्वर से मिलाने के लिए किसी परम गुरु की आवश्यकता पड़ती है। आदिकाल में यह कार्य शिक्षक ही कर देते थे क्योंकि उस समय धार्मिक शिक्षा देना ही जीवन का मूल उद्देश्य होता था। पुस्तकों के ज्ञान का इतना महत्त्व नहीं होता था । धार्मिक शिक्षा और अस्त्र-शस्त्र की विद्या ही प्रदान की जाती थी, तभी उस शिक्षा देने वाले को 'गुरु' कहा जाता था। शिक्षक, अध्यापक आदि शब्द बाद में प्रचलित हुए हैं। गुरु और शिक्षक में यही अंतर है कि गुरु जिन बातों की शिक्षा देता है उन्हें पहले वह अपने जीवन में अपनाता है। उसका जीवन ही शिक्षा का साधन होता है।

शिक्षक अच्छी बातों की शिक्षा तो देता है लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि वह शिक्षक उन बातों को अपने जीवन में अपनाता हो। वे अच्छे कथावाचक तो हो सकते हैं लेकिन उन कथाओं पर आचरण करना सभी के लिए संभव नहीं। उनकी कथनी और करनी में अन्तर हो सकता है। यही कारण है कि हमें विद्या ग्रहण करने बाद भी गुरु बनाने के लिए किसी पूर्ण संत महापुरुष की शरण में जाने की आवश्यकता पड़ती है। गुरु की महत्ता का वर्णन करते हुए श्री गुरु रामदास जी फरमाते हैं :

मेरे राम हम बारिक हरि प्रभ के हैं इयाणे ।
धन्नु धन्नु गुरु गुर गुर सतिगुरु पाधा

जिन हरि उपदेशु दे कीये सयाने ।।

(पृष्ठ संख्या 168)

मानव का मूल उद्देश्य 'परमार्थ' है और इस मंज़िल तक पहुंचने के लिए हमें गुरु की आवश्यकता पड़ती है। सभी महापुरुषों ने गुरु धारण करने के महत्त्व को स्वीकारा है। उनके अनुसार गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। तुलसीदास जी ने तो यहाँ तक कह दिया है :-

राम कृष्ण से को बड़ा
इन हो ने गुरु कीन
तीन लोक के नाइका
गुरु आगे अधीन ।

त्रेता युग में दशरथ पुत्र श्री राम को विष्णु का अवतार मानकर पूजा की गई। द्वापर में श्री कृष्ण को विष्णु का अवतार मान कर उनकी आराधना की गई। उन्हें भगवान कहा गया लेकिन मानव-रूप में अवतार लेने के कारण इन्हें भी गुरु धारण करना पड़ा । श्री राम ने कुलगुरु विशिष्ट मुनि से शिक्षा ग्रहण की और श्री कृष्ण ने गुरु संदीपनी के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए कहा है :-

कुम्भे बंधा जलु रहै
जल बिनु कुम्भु न होइ ।
ज्ञान का बधा मनु रहै,
गुर बिनु ज्ञानु न होइ ।।

(आसा दी वार म. 1)

बलिहारी गुर आपने दिउहाड़ी सद वार ।
जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार ।।1।।

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हज़ार । ऐते चाणन होदिआं गुर बिनु घोर अंधार ।।

(आसा दी वार (श्लोक म. 1))

सहजो बाई ने कहा है :-

गुरु गोबिंद दोउ खड़े काको लागूं पांय
बलिहारी गुरु आपणो, जिन गोबिंद दियो मिलाय ।

गुर बिनु घोरु अन्धारु
गुरु बिनु समझ न आवै ।।
गुर बिनु सुरति न सिधि
गुरु बिनु मुकति न पावै ।।

(सवइये महला 4 के 4) पंना : 727

बिनु सतिगुर किनै न पाइउ
बिनु सतिगुर किनै न पाइया ।।
सतिगुर विचि आपु रखिउनु
करि परगटु आखि सुनाइया ।।

(आसा दी वार पउड़ी)

यदि हम अपनी दिनचर्या को ही देखें तो ज्ञात होता है कि किसी भी का कुछ अंश जब अपने मूल से किसी कारण अलग हो जाता है तो उसे फिर से जोड़ने के लिए उसी वर्ग की वस्तु की मदद लेने की आवश्यकता पड़ती है। यदि कोई कपड़ा फट जाए तो उसे जोड़ने के लिए धागा ही चाहिए। इसी प्रकार सोने को जोड़ने के लिए सोना या ऐसे ही गुणों वाली **धातु** की आवश्यकता पड़ती है । ईंट को ईंट से जोड़ने के लिए मिट्टी एवं सीमेंट की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि इन सबकी जाति एक है। किसी कपड़े को मिट्टी से नहीं जोड़ा जा सकता। सोने को मिट्टी से नहीं जोड़ा जा सकता। ईंट को लोहे से नहीं चिपकाया जा सकता।

तो ऐसे ही मालिक से अलग हुई जीवात्मा को मालिक से मिलाने के लिए मालिक जैसे गुणों के धारक किसी संत-महापुरुष की ही आवश्यकता होती है। कुछ विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि श्री गुरु रविदास महाराज जी ने उस निराकार, सर्वशक्ति सम्पन्न एक ईश्वर को ही अपना गुरु मान लिया था। जैसे :-

तुम कहीअत हौ जगत गुर सुआमी ।
हम कहीअत कलिजुग के कामी ।।1।।

अर्थात हे मालिक! तुम ही पूरे जगत् के गुरु हो परंतु महाराज जी ने अपनी पवित्र वाणी में बताया है कि उस मालिक से मिलने के लिए संत सद्गुरु की आवश्यकता होती है।

परम परस गुरु भेटीऐ पूरब लिखत लिलाट ।
उनमन मन मन ही मिले छुटकत बजर कपाट ।।

अर्थात पूर्ण गुरु ही हमारे वज्र कपाट के द्वार खोल सकता है। गुरु के बिना ईश्वर से मिलाप नहीं हो सकता। इस विचारधारा के अनुसार यह कहा जा सकता है कि महाराज जी ने भी अवश्य ही किसी महामानव (देहधारी) संत महात्मा को अपना गुरु बनाया होगा।

किसी भी साहित्यकार या कवि की रचना पर उसके व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य रहता है। वह जो कुछ भी कहता है, उसका स्वयं का अनुभव होता है। जो कुछ वह देखता है, तर्क दिये हैं लेकिन उसमें से अभी तक कोई भी तर्क पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं सुनता है, उसी में से जिसे वह अपने जीवन में उतारता है, उसे अपनी वाणी व लेखनी के द्वारा प्रस्तुत करता है। सदगुरु रविदास जी ने भी अपनी वाणी में लिखा है :-

तनु मनु अरपउ पूज चरावउ गुर परसादि निरंजनु पावउ ।।

अर्थात जब मैंने अपने तन-मन को गुरु चरणों में अर्पित कर दिया तो प्रभु की कृपा से मैंने निरंजन (परमात्मा) को पा लिया । गुरु की ज़रूरत को स्वीकार करते हुए महाराज जी कहते हैं:

बिनु देखे उपजै नहीं आसा ।
जो दीसै सो होइ बिनासा ।।

जब तक किसी को देखा न जाये, उसके रंग-रूप, आकार के दर्शन-दीदार न किये जायें, तब तक उसके प्रति स्नेह की भावना उत्पन्न नहीं होती और जो दिखाई दे रहा है, वह सभी नश्वर होने वाला है। केवल प्रभु ही अविनाशी है और वह दिखाई नहीं देता। जब प्रभु हमें दिखाई नहीं देंगे तो भला उनके प्रति कैसे आकर्षित हो सकते हैं? उसके प्रति प्रेम-भाव कैसे पैदा होगा? अतः उससे मिलाप कैसे होगा? महाराज जी जीव की इस उलझन का समाधान बताते हुए लिखते हैं :-

संत तुझी तनु संगति प्रान ।
सतिगुर गिआन जानै संत देवादेव ।।

अर्थात संत उस मालिक का रूप हैं। परम-शक्ति के गुणों के धारक संत महापुरुष ही हमारा मिलाप उस मालिक के साथ करवा सकते हैं। संतों की संगति करने से, उनके साथ प्रेम करने से ही मालिक से प्रेम संभव हो सकेगा

संत अनंतहि अंतरु नाही ।

अतः उपर्युक्त पूरे विवेचन से यह स्पष्ट है कि श्री गुरु रविदास महाराज जी ने भी किसी महापुरुष को अपना गुरु अवश्य बनाया होगा। लेकिन अब यह विचार करना होगा कि उनके गुरु थे कौन?

यह निश्चित कर पाना कठिन है कि सद्गुरु रविदास महाराज के गुरु कौन थे? भिन्न-भिन्न विद्वानों ने महाराज जी के गुरु बनाने के बारे में अनेक तर्क दिये हैं लेकिन उसमें से अभी तक कोई भी तर्क पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हुआ। बहुत अधिक महान विद्वानों ने गुरु रामानंद को आप जी का गुरु कहा है परंतु सद्गुरु रविदास जी की वाणी जो कि गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज है और अन्य प्रमाणित वाणी से भी यही स्पष्ट हुआ है कि आप जी ने कहीं भी रामानंद को अपना गुरु होने का उल्लेख नहीं किया। ये दंतकथायें जो पूर्ण अप्रमाणित हैं, आज के वैज्ञानिक और प्रमाणित युग में स्वीकार नहीं की जा सकतीं ।

स्वामी रामानंद और गुरु रविदास जी की विचारधारा बिल्कुल अलग-अलग थी। चाहे दोनों ने भगवान की प्राप्ति का मार्ग बताया, दोनों की मंज़िल एक थी पर फिर भी रास्ते भिन्न-भिन्न थे। स्वामी रामानंद जी बाहरी कर्मकांडों और सांसारिक पूजा सामग्री में विश्वास रखते थे परंतु श्री गुरु रविदास जी ने इन सब का खंडन कर केवल एक प्रभु के सच्चे नाम की आराधना करने को कहा।

सहज मार्ग द्वारा प्रभु भक्ति की प्रेरणा दी। दूसरा - स्वामी रामानंद ब्राहमण जाति से संबंध रखते थे। आप ही बताइए कि मनुवादी विचारधारा में विश्वास रखने वाले महापुरुष आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व निम्न जाति में पैदा हुए गुरु रविदास को अपना शिष्य कैसे मान सकते थे? क्योंकि कुछ विद्वानों के अनुसार जब सद्गुरु कबीर महाराज जी स्वामी रामानंद को अपना गुरु बनाने के लिए गए तो स्वामी रामानंद ने उन्हें अछूत कहकर दीक्षा देने से इनकार कर दिया था परंतु सद्गुरु कबीर जी जानते थे कि स्वामी रामानंद जी गंगा नदी पर प्रतिदिन सुबह स्नान करने जाते हैं। मन में दृढ़ संकल्प कर सद्गुरु कबीर जी भी सुबह उसी घाट पर सीढ़ियों में लेट गए। जब स्वामी जी स्नान करने के लिए घाट की सीढ़ियों से होकर गुज़रने लगे तो उनका पाँव सद्गुरु कबीर जी के तन से स्पर्श हुआ। उन्होंने सोचा कि यह कोई वस्तु होगी जिस पर मैंने अपना पांव रख दिया है। उन्होंने ध्यान से उसकी ओर देखा तो पाया कि कोई मानव सीढ़ियों पर लेटा हुआ था। एकाएक उनके मुख से यह शब्द निकले, उठो बेटा, 'राम कहो। तभी से कबीर महाराज जी अपने गुरु के मुखारबिंद से निकले प्रवचनों को भजने लगे। उसी राम-नाम का स्मरण करने लगे। जब कबीर जी से उनके गुरु का नाम पूछा गया तो वे कहने लगे, 'मेरे गुरु स्वामी रामानंद हैं।' पता चलने पर लोगों ने स्वामी रामानंद का कड़ा विरोध किया और हुए उनसे पूछा कि आप ने सामाजिक मर्यादा को भंग करके एक जुलाहे को दीक्षा कैसे दे दी? स्वामी रामानंद जी ने कहा कि मैंने उनको दीक्षा नहीं दी। कबीर झूठ कहता है। तब कबीर महाराज जी ने स्वामी को गंगा घाट की घटना का स्मरण करवाया और कहा कि महाराज जी, आप ने ही तो मुझे गंगा घाट से उठाकर कहा था - "राम का हो" तभी से मैं आपके वचनों का पालन करता आ रहा हूँ। अतः आप ही मेरे गुरु हैं।"

अब सोचने की बात यह है कि यदि सद्गुरु कबीर को जुलाहा जाति का होने के कारण स्वामी रामानंद ने दीक्षा देने से इनकार कर दिया तो फिर चमार जाति में जन्म लेने वाले सद्गुरु रविदास के गुरु रामानंद कैसे हो सकते हैं? गुरु रविदास के लिए मनुवादी कट्टर विचारधारा का त्याग उन्होंने कैसे कर दिया होगा? कदापि नहीं। इसलिए यह तो निश्चित है कि स्वामी रामानंद सद्गुरु रविदास जी के गुरु हो ही नहीं सकते। इसी के साथ-साथ यह भी प्रमाण मिलता है कि अगर सद्गुरु रविदास जी अपने समकालीन महापुरुषों जैसे कि सद्गुरु कबीर, सद्गुरु नामदेव, सद्गुरु त्रिलोचन सद्गुरु सधना, सद्गुरु सैण आदि का अपनी वाणी में श्रद्धापूर्वक उल्लेख कर सकते हैं अगर स्वामी रामानंद जी सद्गुरु रविदास जी के गुरु होते तो महाराज जी अपनी वाणी में अपने गुरु की प्रशंसा क्यों न करते? सद्गुरु रविदास जी ने अपनी वाणी में झूठे आडम्बरों, कर्मकाण्डी सामग्री और पूजा के दिखलावे वाले ढंगों का तर्कयुक्त खण्डन किया है, जिनका स्वामी रामानंद जी ने समर्थन किया है-

दूधु त बछरै थनहु बिटारिओ
फूलु भवरि जलु मीनि बिगारिओ । । १ ।।
माई गोबिंद पूजा कहा लै चरावउ ।
अवरु न फूलु अनूपु न पावउ । । १ । । रहाउ ।।
मैलागर बेहर्र है भुइअंगा ।
बिखु अंम्रितु बसहि इक संगा ।। २ ।।
धूप दीप नईबेदहि बासा ।

कैसे पूज करहि तेरी दासा । । ३ । ।
तनु मनु अरपर पूज चरावउ ।
गुर परसादि निरंजनु पावउ ।।४।।
पूजा अरचा आहि न तोरी ।।
कहि रविदास कवन गति मोरी ।। ६ ।।५।।

(आदि ग्रन्थ पन्ना 325)

सद्गुरु रविदास जी ने दूध, फूल, जल आदि सारी पूजा सामग्री को जूठा कहते हुए केवल एक परमेश्वर हुए केवल एक परमेश्वर के नाम का ही स्मरण करने को कहा है। पूजा का नया वैज्ञानिक सिद्धांत देकर आप जी ने प्रभु नाम को ही पूजा सामग्री कहते हुए अपना तन-मन गुरु को अर्पित करने का संदेश दिया है। यह सारी सांसारिक सामग्री भगवान की पूजा के तुल्य नहीं है। प्रभु का स्मरण सच्चे हृदय से करके उस मालिक से अभेद हुआ जा सकता है। सद्गुरु जी की ऐसी पवित्र वाणी से प्रभावित होकर ही रामानंद जी ने ये शब्द कहे थे -

कत जाईऐ रे घरि लागो रंगु ।।
मेरा चितु न चलै मन भइउ पंगु ।।१।। रहाउ ।।
की एक दिवस मन भई उमंग ।।
घसि चंदन चोआ बहु सुगंध ।।
पूजन चाली ब्रहम ठाइ ।।
सो ब्रहम बताइओ गुर मन ही माहि । । १ । ।
जहा जाईऐ तह जल पखान ।।
तू पूरि रहिउ है सभ समान ।।
बेद पुरान सभ देखे जोइ ।।
ऊहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ ।।२।।
सतिगुर मै बलिहारी तोर ।।
जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर ।।
रामानंद सुआमी रमत ब्रहम ।।
गुर का सबदु काटै कोटि करम ।।३।।१।। (पंना ११६५)

हे मानव तू किधर को जा रहा है, प्रभु तो तेरे अंदर है, बाहर नहीं। चाहे मैं भी तेरी तरह बाहरी कर्म-काण्डों में फंसा हुआ था, अब सद्गुरु की कृपा से मेरे सभी भ्रम दूर हो गए हैं। सभी उलझनें समाप्त हो गई हैं और भक्ति के सहज मार्ग से मैंने अपने भीतर से ही उस मालिक को पा लिया है।

अतः यह कहा जा सकता है कि सद्गुरु रविदास जी के साथ स्वामी रामानन्द की गोष्ठी हुई होगी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सद्गुरु रविदास जी तो स्वामी रामानन्द के गुरू हो सकते है परन्तु स्वामी रामानंद का सद्गुरु रविदास के गुरु होने का प्रमाण कहीं भी नहीं मिलता। बिना किसी आधार के अप्रमाणित पैतृक कथाओं से यह मान लेना कि रामानंद सद्गुरु रविदास के गुरु थे, अनुचित है, निराधार है।

अब हमें यह तो मालूम हो गया कि स्वामी रामानंद सद्‌गुरु रविदास जी के गुरु नहीं थे। अब प्रश्न यह उठता है कि फिर कौन महापुरुष उनके गुरु थे?

इसकी पुष्टि संत कांशी दास जी, जिनका आश्रम करापुर, जिला सागर (मध्य-प्रदेश) में है, ने की है। उन्होंने अपनी रचना में लिखा है कि संदन मुनि सद्‌गुरु रविदास जी के गुरु हुए हैं जो कि आदिवासी (अछूत) थे।

सारांश रूप से यह निष्कर्ष निकलता है-

1) सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने गुरु-धारण अवश्य किया

2) स्वामी रामानंद उनके गुरु नहीं हो सकते ।

3) सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के गुरु आदिवासी संत ही हो सकते हैं।

प्रथम क्रांतिकारी एवं समाज-सुधारक

नागर जनां मेरी जाति बिखिआत चंमारं रिदै राम गोबिंद गुन सारं

सद्‌गुरु रविदास महाराज का जिस मध्यकाल में आविर्भाव हुआ, उस समय देश और समाज विषम परिस्थितियों में से गुज़र रहा था। देश में मुस्लिम शासन होने के कारण धार्मिक कट्टरपंथता ज़ोरों पर थी। सत्ता के ज़ोर पर वैभव का प्रलोभन दिखाकर, धर्म परिवर्तन करवाने का अभियान तेज़ी पर था। दूसरी ओर हिंदुओं में ऊँच नीच, जाति-पाति, छुआछूत की बीमारी पूर्ण शिखर पर थी। अनंत कुरीतियों व कर्मकांडों में उलझा हिंदु धर्म खंड- विखंड होते हुए भी देवी-देवताओं व भगवान के अवतारों के चक्रव्यूह में घिरा हुआ था। दोनों ही धर्मावलम्बी समाज के मध्यवर्गीय, निम्न व छोटी जाति के लोगों के उत्पीड़न और शोषण में संलग्न थे।

धर्म उस समय केवल ऊँचे लोगों की तिजौरी में ही बंद था। अछूतों के लिए शिक्षा के द्‌वार बंद थे। वेद-शास्त्रों को पढ़ने और सुनने पर भी पाबंदी थी। ऐसी स्थिति में सद्‌गुरु रविदास महाराज जी पहले ऐसे संत हुए जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक शक्ति से ऐसी क्रांति उत्पन्न की जिससे राजमहलों में जाने वाली पगडंडियां गरीबों की झोंपड़ियों की ओर मुड़ गईं। इसी क्रांति से प्रभावित शाही महल की महारानी मीराबाई और झालांबाई ने सद्‌गुरु रविदास जी को अपना गुरु बना लिया। महाराज सद्‌गुरु रविदास जी के जन्म से पहले किसी भी महापुरुष ने ऐसा कर्म नहीं किया था कि वह समाज के उच्च वर्ग दद्‌वारा शोषित निम्न जाति के दलितों पर हो रहे अन्याय का विरोध कर सकने की क्षमता रख सके। गुरु रविदास जी ने निर्भय होकर धर्मान्ध लोगों से कहा :

जन्म जात मत पूछिए का जात अरु पात।
रविदास पूत सब प्रभ के कोउ नहीं जात कुजात।

सद्‌गुरु रविदास जी ने पवित्र नगरी काशी को अपनी कर्मस्थली बनाया। सद्‌गुरु जी ने जब होश संभाली तो देखा कि शूद्रों का एक अलग ही मुहल्ला है और रहन-सहन भी दूसरों से अलग है। उनको घूमने-फिरने की भी आज़ादी नहीं है। यदि उन्होंने शहर या बाज़ार में से गुज़रना होता तो उन्हें विशेष प्रकार का पहचान चिन्ह (गिरज का पंख) लगाकर जाना पड़ता ताकि अमीर उच्च वर्ग को सूचना मिल जाए कि नीच कहलाऐ जाने वाले वर्ग का कोई व्यक्ति बाज़ार में से गुज़र रहा है, जिससे बाकी सभी लोग घरों के भीतर चले जाएं, अपने घर के द्‌वार बंद कर दें ताकि निम्न व्यक्ति की परछाई उच्च वर्ग पर न पड़ सके। कहीं वह भ्रष्ट न हो जाए। गुरु जी ने देखा कि उच्च वर्ग द्‌वारा स्थापित इन कानूनों की अवज्ञा करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था ।

सद्‌गुरु रविदास जी बचपन से, यह सब कुछ देखते आ रहे थे। आखिर एक दिन अपनी माँ कलसां से पूछने लगे माँ, ऐसा क्यों है? क्या हम सभी को बनाने वाला एक ही विधाता नहीं है? माता कलसां ने कहा, 'बेटा, कुछ समय पहले हमारे भारत के मूल निवासी आपसी प्रेम-प्यार से मिलजुल कर रहते थे। सभी को समान अधिकार मिले हुए थे। कोई भी एक दूसरे से वैर, विरोध, राग-द्‌वेष नहीं रखता था। इसीलिए भारत को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। समय बीतता गया। कुछ समय के पश्चात् भारत में विदेशी जाति आर्यों का आगमन हुआ। उन्होंने सोचा कि अब इन मूल

निवासियों पर कैसे अधिकार किया जाए। भारत में अपना स्थान बनाने के लिए उन्होंने कूटनीति से काम लिया। मनु नाम के एक बहुत ही कूटनीतिज्ञ व्यक्ति ने एक पुस्तक लिखी जिसमें ऐसे कानूनों की व्यवस्था की कि गरीबों से जीने के सभी अधिकार छीन लिए। उनको धरती पर बोझ कहा जाने लगा। यहां तक कि गरीबों के कुदरती अधिकार भी मनुवादियों ने अपने हाथ में ले लिए। परिणामस्वरूप गरीब अपनी रोटी के लिए भी तरसने लगा। उनके लिए विद्या के द्वार बंद हो जाने के कारण लोग अज्ञानी हो गए।

अज्ञानता के कारण वे मनुवादियों द्वारा बताए अंधविश्वासों और कर्मकांडों के जाल में फंसने लगे। माँ की बात सद्गुरु रविदास जी झट से समझ गए और बोले कि माँ! अब इस अज्ञानता को समाप्त करना ही पड़ेगा। इन धर्म के ठेकेदारों को बताना ही होगा कि हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं, अतः सभी बराबर हैं। यह प्रतिज्ञा कर सद्गुरु रविदास जी ने आध्यात्मिक क्रांति का बिगुल बजा दिया।

सद्गुरु रविदास महाराज जी सोचने लगे कि इन अज्ञानी मूर्खों को कैसे बताया जाए कि हम सब एक हैं। यही सोचकर आप जी ने चमड़े का काम करते हुए भी माथे पर तिलक लगाना, जनेऊ पहनना, ठाकुरों की पूजा करना और सुबह-शाम शंख बजाना शुरु कर दिया। जब आप जी ने प्रभात के समय ऊँची आवाज़ में शंख बजाया तो उसकी निराली ध्वनि पूरे बनारस शहर में गूँज गई। शंख की सुंदर, सुरीली अनुपम आवाज़ शूद्रों के मुहल्ले में से सुनकर बनारस में चर्चा फैल गई। सभी लोग इकट्ठे हुए, उन्होंने सभा बुलाई और पता किया कि यह शंख किसने बजाया है। जिस तरफ से आवाज़ आई है, वहाँ तो सभी शूद्र ही रहते हैं, फिर शंख की आवाज़ कैसी? सभी ने मता पास किया और नूरे मरासी को पता लगाने के लिए भेजा गया। वह शूद्रों के मुहल्ले में गया। नूरे मरासी ने सभी को एकत्र किया और कड़क कर पूछा कि इस मुहल्ले में शंख किसने बजाया है? खोटे कानूनों से शोषित व दबे हुए लोग सहमी आवाज में कहने लगे कि संतोख के पुत्र रविदास ने शंख बजाया है। यह सुनकर नूरा संतोख दास के घर पहुंचा और पिता संतोख दास को कहने लगा कि सारे कांशी शहर में चर्चा है कि आपके पुत्र ने शूद्र होकर शंख बजाने की गुस्ताखी की है जिससे विप्र बहुत क्रोध में हैं। अपने पुत्र को समझा दो कि वह इसके बाद यह गलती कभी न करे।

अभी आप अपने बेटे को साथ लेकर पण्डितों से माफी मांग कर आएं। पिता संतोख अभी कुछ कहने ही वाले थे कि सद्गुरु रविदास जी कमरे से बाहर निकले और कहने लगे, – नूरे ! तुमने तो केवल शंख की आवाज़ सुनी है लेकिन मैं तो माथे पर तिलक भी लगाता हूं, जनेऊ भी पहनता हूँ और मेरे अंदर आ कर देख, मैंने तो ठाकुर भी रखे हुए हैं और में दिन रात इनकी पूजा भी करता हूँ। मुझे ईश्वर ने इसी कार्य के लिए भेजा है। यह शंख की आवाज़ नहीं है, बल्कि यह तो शोषित लोगों के क्रांतिकारी बिगुल की आवाज़ है। नूरे ! चल मैं तेरे साथ उन लोगों के पास चलता हूँ, जिन्होंने तुझे यहां भेजा है। जब गुरु जी नूरे के साथ पण्डितों की सभा में पहुँचे, तो सद्गुरु रविदास जी को देख कर सभी विप्र आश्चर्यचकित रह गए क्योंकि उन्होंने कभी सोचा भी न था कि कोई शूद्र भी शंख बजाने की हिम्मत कर सकता है और रविदास जी को तिलक लगाए, जनेऊ पहने देख कर तो उनके पाँवों तले से ज़मीन खिसक गई। भीतर से तो वे काँप चुके थे लेकिन बाहर से झूठी शान दिखाते हुए बोले, – रविदास! आप यह जनेउ नहीं पहन सकते और मस्तक पर तिलक नहीं लगा

सकते। पर सद्गुरु रविदास जी उनके समक्ष कहाँ झुकने वाले थे? वे तो शाश्वत अनुभव की जीवन घुट्टी पी चुके थे, जिसने उनकी रसना पर बसा दिया था:

जस हरि कहिए, तस हरि नाही ।

सद्गुरु जी ने कहा कि नहीं! सभी एक ही बूंद से पैदा हुए हैं और सभी को बनाने वाला भी एक ही है।

रविदास उपजइ सभ एक बुंद ते, का बाहमण का सूद ।
मूरखि जन न जानई, सा मह राम मजूद । ।

गुरु जी ने अज्ञानियों को समझाते हुए यहां तक कह दिया गया कि हम सब एक ही नूर से पैदा हुए हैं। सद्गुरु कबीर जी ने भी अपनी वाणी में लिखा है :

जे तू ब्राहमण-ब्राहमणी जाया
तउ आन बाट काहे नहीं आया ।
तुम कब ब्राहमण हम कत सूद
हम कत लोहू तुम कत दूध
कहु कबीर जो ब्रहम बीचारै
सो ब्राहमणु कहीअतु है हमारै।

सद्गुरु रविदास जी ने कहा :-
जातपात के फेर मंहि, उरझि रहई सभी लोग ।
मानुषता को खात हइ रविदास जात का रोग।

जब उन विप्र लोगों ने देखा कि रविदास मनमर्जी कर रहा है, हमारी बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दे रहा तो उन्होंने रविदास जी को मारने के लिए उन पर वार किया, पर गुरु जी का बाल भी बांका न हुआ। तब उन लोगों ने उस समय के कांशी नरेश राजा हरदेव नागर मल्ल को शिकायत की। कहने लगे,– 'राजा! तेरी यह नगरी अंधेर नगरी बन गई है। आप के राज्य में एक शूद्र निडर होकर प्रभु के नाम की माला जप रहा है, माथे पर तिलक लगाकर और जनेऊ पहनकर खुलेआम ठाकुरों की पूजा कर रहा है। सुबह-शाम शंख भी बजा रहा है, जबकि मनु-स्मृति में लिखा है कि कोई भी शूद्र प्रभु-भक्ति नहीं कर सकता। राजा हरदेव नागर मल्ल ने पण्डितों को विश्वास दिलाया कि मेरे होते हुए यह अन्याय नहीं हो सकता। एक शूद्र ब्राह्मणों वाले कर्म नहीं कर सकता। राजा ने उसी समय अपने सिपाही भेजकर गुरु रविदास जी को राज दरबार में बुला लिया।

सद्गुरु रविदास महाराज जी ने राज-दरबार में प्रवेश करते ही शंख बजाना शुरु कर दिया। यह देख कर राजा के दरबार में बैठे सभी विप्र क्रोधित मुद्रा में राजा को कहने लगे कि आप स्वयं ही देख लीजिए, कितना बेखौफ है? इसने तो आपका भी खौफ नहीं खाया। देखो, कैसे अभी भी तिलक

लगाकर और जनेऊ पहनकर आया है। पूरे दरबार में विप्र शोर करने लगे लेकिन राजा ने जब श्री गुरु रविदास जी के नूरी चेहरे के दर्शन किए तो उसका सारा क्रोध एकदम शांत हो गया। मन में विचार करने लगा कि यह तो अवश्य कोई इलाही नूर है। मैंने इसे क्या समझाना है, इसने तो मुझे भी अपना बना लिया है। पर राजा को विप्रों की बात भी तो रखनी थी। विप्र कहीं नाराज़ न हो जाएं, इसलिए राजा बोला- 'रविदास! विप्र जो कह रहे हैं, क्या सब ठीक है?

सद्गुरु रविदास जी ने जबाब दिया, 'महाराज यह सब कुछ सत्य ही कह रहे हैं और इसका प्रमाण भी आपके सामने है।

फिर रविदास तुम यह काम छोड़ क्यों नहीं देते? तुम नीच हो, प्रभु की पूजा नहीं कर सकते। तुमने चमार के घर जन्म लिया है।'

राजा का उत्तर सुनकर सद्गुरु रविदास जी मुस्कुराए और कहने लगे, 'राजा मुझे तो गर्व है कि मैंने बहुत ही प्रतिष्ठित और समृद्ध जाति 'चमार' में जन्म लिया है।'

नागर जनां मेरी जाति बिखिआत चंमारं ।।
रिदै राम गोबिंद गुन सारं ।।1।। रहाउ ।

हे मेरे नगर के वासियो ! मुझे बहुत मान है कि मैं उस चमार जाति में पैदा हुआ हूँ जो विश्व में महान है, सब जीवों में से श्रेष्ठ है क्योंकि 'चमार शब्द चार शब्दों के मेल से बना है- च+म+आ+र । जिसके भाव हैं - च से चमड़ी, म से मांस, अ से अस्थि और र से रक्त। अतः संसार का हर जीव चमार है। मैं भी चमार हूँ और मेरे हृदय में प्रभु का नाम बसा है, जिससे मैं और भी महान हो गया हूँ। हे राजा! कोई भी व्यक्ति किसी जाति में जन्म लेकर नीच नहीं होता -

रविदास जन्म के कारनै होत न कोई नीच।
नर को नीच कर डारि है औछै करम को कीच।

राजा! प्रत्येक इंसान उस मालिक की ही रचना है। फिर ऊँच नीच बनाने वाले हम कौन होते हैं? मालिक ने तो सभी को एक समान बनाया है।

एक माटी के सभ भाण्डे
सबका एको सिरजनहारा
रविदास ब्यापै एको घट भीतर,
सभ को एको घड़े कुम्हारा।

लेकिन सद्गुरु रविदास जी के रहस्यमयी ज्ञान की बातों का उन अज्ञानी पत्थर दिलों पर कोई प्रभाव न हुआ और वे यही रट लगाते रहे कि कोई भी नीच जाति में पैदा होने वाला प्रभु की भक्ति नहीं कर सकता। ब्राहमणों वाला वेश धारण नहीं कर सकता।

सद्गुरु रविदास जी ने कहा "मैं तो चार युगों से प्रभु-भक्ति करता आ रहा हूं और आगे भी करता रहूँगा। विप्र बोले, नहीं राजा! हमने आज तक किसी शूद्र को भक्ति करते नहीं देखा। अगर इसने भक्ति की है तो कोई प्रमाण प्रस्तुत करे। सद्गुरु रविदास महाराज जी उसी समय दरबार में से उठ खड़े हुए और आपने अपना सीना चीरकर चार युगों के जनेउ निकाल कर दिखा दिए। जब सीना

चीरा तो उसमें से निकले खून के छींटे दूर-दूर तक जा पड़े। कुछ छींटे राज-सिंहासन पर विराजे राजा पर भी पड़े। राजा यह सारा कौतुक देखकर घबरा गया। सोचने लगा कि यह विप्र जो कुछ भी नहीं जानते, तो भी इन्होंने मुझे अभिशाप देने की धमकी दी थी। वे कहते थे कि अगर हमारी बात नहीं मानी तो हम सभी को नष्ट कर देंगे और यह जो प्रभु-रूप है, जिसने इतना खून बहाया है और चार युगों के जनेऊ भी मुझे दिखा रहा है, यह न जाने मुझे कौन सा अभिशाप देगा? राजा ने हाथ जोड़े और कहने लगा कि रविदास, 'अगर तेरे पास चार युगों के जनेउ थे, तो तुम ऐसे ही बता देते, इतना खून बहाने की क्या आवश्यकता थी?"

रविदास जी कहने लगे कि राजन् ! खून बहाने के मेरे दो उद्देश्य हैं। एक तो यह कि कभी इन लोगों के भी चोट लगी होगी और खून भी निकला होगा। मैं पूछता हूँ कि क्या इनका खून मेरे खून जैसा लाल रंग का ही है या किसी दूसरे रंग का? यदि इनका खून भी लाल है तो यह ऊँच कैसे और मैं नीच कैसे? दूसरा- मैंने इस रक्त से दलित वर्ग के पौध की सिंचाई की है ताकि यह सदा हरा-भरा रहे और कभी भी न मुरझाए । मेरे खून से सींचा यह पौधा आने वाली पीढ़ियों को फल देता रहेगा। 'राजा! यह जनेऊ और तिलक मैंने इसलिए धारण नहीं किए कि इनको धारण करने से प्रभु की प्राप्ति होती है, अपितु मैं ऐसा इसलिए करता हूँ कि आप सभी को मालूम हो जाए कि हर व्यक्ति ऐसा पहरावा पहन सकता है।

मुझे यह सब कुछ आप सभी को समझाने के लिए ही करना पड़ा। आप सभी को यह बताना था कि हम सभी एक हैं और सभी को मालिक की पूजा करने का बराबर अधिकार है, चाहे वह किसी भी जाति से हो, अमीर हो या गरीब। हम सभी उस एक ईश्वर की संतान हैं और ईश्वर हम सभी का है, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म का हो ।

उलटी गंगा बहाना

आपन बापै नाही किसी को भावन को हरि राजा।
मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ भगत नहीं संतापा ।।

'उलटी गंगा बहाने से भाव है ऐसा असंभव कार्य कर दिखाना जिसके संभव होने की सोच भी किसी के मन में न हो। कठिन से कठिन कार्य जिसे किसी ने पहले न किया हो और न कोई आगे कर पाने की क्षमता रखता हो और जो समाज में हो रहा हो उसके बिलकुल विपरीत हो तो ऐसी कठिन एवं विषम परिस्थिति में किया गया असंभव कार्य उस व्यक्ति विशेष द्वारा "उलटी गंगा बहाने" के बराबर है।

सद्गुरु रविदास महाराज जी ने अपने युग में ऐसी ही उलटी गंगा बहाकर सभी को चकाचौंध कर दिया। तत्कालीन लोगों में यह धारणा प्रचलित थी कि नीच जाति में जन्म लेने वाला व्यक्ति जनेऊ नहीं पहन सकता, धोती नहीं पहन सकता, माथे पर तिलक नहीं लगा सकता, ठाकुरों की पूजा नहीं कर सकता, शंख नहीं बजा सकता, किसी मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकता, प्रभु-भक्ति करना तो दूर प्रभु का नाम भी अपनी जुबान पर नहीं ला सकता, समाज में सिर उठा कर नहीं चल सकता, तभी सद्गुरु रविदास जी ने इन सभी धारणाओं को खण्डित कर उससे उलट वे सभी कार्य निर्भय होकर कर दिखाए और उलटी गंगा बहा कर दिखा दी। उस समय का उच्च वर्ग समाज यह कहता था :-

"**पूजीए विपर सील गुण हीना। नाही न सूदर ज्ञान गुण गीना ।।**"
(अर्थात विप्र की ही सदा पूजा होनी चाहिए चाहे वह अवगुणों से भरा हो और शूद्र की पूजा कभी नहीं करनी चाहिये, चाहे वह सर्वगुण सम्पन्न भी क्यों न हो ।)

सद्गुरु जी ने इसके उलट समाज को बताया :-

"**रविदास बाह्मण मत पूजीए जो होवे गुणहीन।**
पूजीए चरण चण्डाल के जो होवे गुण प्रवीन ।।"

पंद्रहवीं शताब्दी में जब सद्गुरु रविदास जी बनारस की धरती पर प्रकट हुए तो यह माना जाता था कि परमात्मा केवल एक विशेष वर्ण के लोगों का ही है। केवल उच्च वर्ग ही प्रभु की भक्ति कर सकता है, दूसरे वर्गो को इससे कोई मतलब नहीं है। वे प्रभु को अपनी व्यक्तिगत जायदाद समझ कर उसे मंदिरों में बंद रखते थे। उनका कहना था कि नीच जाति की जुबान पर यदि परमात्मा का नाम आया या प्रभु के नाम की आवाज़ नीच वर्ग के कानों में पड़ी तो स्थिति भयानक हो सकती है। परमात्मा भ्रष्ट हो जाएगा। अतः नीच वर्ग को प्रभु से दूर रखना ही उचित है। लेकिन रविदास महाराज जी ने उन मूर्ख लोगों की मूर्खता पर हँसते हुए कहा कि सबको पैदा करने वाला, पूरी कायनात का मालिक किसी एक की संपत्ति कैसे हो सकता है? कण-कण में निवास करने वाला, सर्वशक्तिमान ईश्वर किसी की पैतृक सम्पति कदापि नहीं हो सकता।त

आपन बापै नाही किसी को भावन को हरि राजा।

मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ भगत नहीं संतापा ।।

सद्गुरु जी ने ज्ञान की गंगा बहाकर, रुढ़िवादी परम्पराओं के स्थान पर नई वैज्ञानिक, प्रमाणित मानवतावादी विचारधाराओं का निर्माण करके एक नये धर्म की बुनियाद रखी। इसीलिए उनके समय के विप्रों ने आप जी को 'उलटी गंगा बहाने वाला' कहा।

इतिहासकारों का यह भी मानना है कि जब सद्गुरु रविदास महाराज जी ने अपना सीना चीर कर राजा हरदेव नागरमल्ल की कचहरी में जाति अहंकारियों को चारों युगों के जनेऊ दिखाए थे और उन्हें यह भी बताया था कि मैंने प्रभु भक्ति केवल इस युग से ही शुरू नहीं की, बल्कि जब से पृथ्वी पर मानव पैदा हुआ है तभी से प्रभु का स्मरण करता आ रहा हूँ, जनेऊ पहनता आ रहा हूँ। आप जी ने भरी सभा में कहा था,- 'राजा! यह जो सोने का जनेऊ तुम देख रहे हो, यह सतियुग का है। उस समय के लोग सत्यवादी हुआ करते थे। ऊँच-नीच का बोलबाला नहीं था, सभी एक समान प्रेम से रहते थे, खुशहाल थे।

यही कारण है कि उस समय के लोग कीमती सोने का जनेऊ पहनते थे। राजा! जब त्रेता युग आया तो जनेऊ चाँदी का रह गया। लोगों की सात्विकता में कमी आ गई और जनेऊ की कीमत चाँदी के मूल्य जितनी रह गई। जब द्वापर युग आया तो लोगों में आपसी मत-भेद बढ़ने लगा। व्यक्ति की तुलना उसके कर्मो के आधार पर नहीं बल्कि जाति के आधार पर होने लगी। ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाई झगड़े बहुत अधिक बढ़ गये जिससे जनेऊ की कीमत भी तांबे जितनी रह गई। जब द्वापर के बाद कलियुग की बारी आई तो राजा ! देख यह सूत का जनेऊ जो सभी ने डाला है, धागे के रूप में रह गया। लोगों में फैले अंहम, अज्ञान और विकारों के कारण लोग परमात्मा को भूल कर उसके नियमों की अवज्ञा कर रहे हैं, मानव-मानव का वैरी हो रहा है इसलिए राजा ! यह सूत का जनेऊ हमारे आपसी संबंधों का और प्रेम में आई गिरावट का प्रतीक है। सोने से टूट कर यह जनेउ सूत का रह गया है जो न तो अधिक कीमती है और न ही स्थिर है।

राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल और सभा में बैठे सभी विप्र रविदास जी के नूरी स्वरूप और मुख से उच्चरित वचनों को सुन कर आश्चर्यचकित रह गए। विप्रों के चेहरों का रंग पीला पड़ गया। लेकिन अहम् अभी भी समाप्त न हुआ। राजा उन विप्रों से कहने लगा- "पण्डित जी, यदि अभी भी कोई शंका मन में रह गई है तो बताओ, उसका समाधान भी अभी ही हो जाए।

राजा की बात सुनकर असंतुष्ट विप्रों ने शिकायत की कि जब हम स्नान करने गंगा पर जाते हैं तो रविदास गंगा के पूर्व की ओर स्नान करता है और जिसके कारण पानी भ्रष्ट हो कर नीचे की ओर आता है, जिस में हमें स्नान करना पड़ता है। इस तरह दूषित पानी से हमारा शरीर भी दूषित हो जाता है। गुरु जी ने तब राजा को उत्तर दिया कि हे राजा! संसार में लगभग 84 लाख जोनियाँ हैं और उनमें से 9 लाख प्रकार के जीव-जन्तु ऐसे हैं जो पानी में रहते हैं। उनका जन्म भी पानी में होता है और वहीं पर वे समाप्त हो जाते है। पानी में ही वे मल-मूत्र करते हैं, तब तो वह पानी दूषित नहीं होता? फिर उत्तम समझा जाने वाला इन्सान यदि पानी में स्नान करता है तो उससे पानी कैसे दूषित हो सकता है? मानव जाति तो सर्वश्रेष्ठ है।

सद्गुरु जी का यह तर्क सुनकर सभी की जुबान पर ताला लग गया। काफी समय तक चुप्पी साधने के बाद जब उन्हें अपनी हुकूमत डोलती हुई नज़र आई, तो वे फिर से बोले, 'राजा, कुछ भी हो, यह रविदास नीच जाति में पैदा हुआ है, अतः इसके नहाने से हमारा धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। आप इसे कहें कि यह पूर्व की तरफ स्नान न करे। राजा ने कहा- चलिए, रविदास, तुम ऐसा करो कि जिधर से गंगा का पानी बहता है उधर न नहाकर नीचे की तरफ स्नान कर लिया करो तांकि आपके नहाए हुए पानी का बहाव इन पण्डितों की ओर न जाए। सद्गुरु जी नम्रता सहित बोले, 'राजा! गंगा तट के जिस स्थान पर मैं बैठ कर स्नान करता हूँ, उसका बहाव नीचे दक्षिण की ओर नहीं आता। वहाँ का पानी तो पूर्व में ऊँची तरफ बहता है। पण्डित झट से बोल उठे, 'राजा! यह हमें मूर्ख बनाने की कोशिश कर रहा है। कभी जल नीचे से ऊपर की तरफ भी जा सकता है? रविदास झूठ को सत्य में बदल रहा है।

महाराज जी कहने लगे कि अगर आप को यकीन नहीं तो चलो मैं आप को दिखा देता हूँ। राजा तो समझ गया हुआ था कि रविदास जो कहता है वह सत्य ही होता है क्योंकि वह उसकी शक्ति को भी जान गया था। उसे पता था यह कोई सामान्य प्राणी नहीं है, यह तो कोई इलाही नूर है जो सब कुछ कर सकता है पर पण्डितों को बताने के लिए राजा को वहाँ जाना ही पड़ा। जब राजा पण्डितों को लेकर वहाँ पहुँचा, तो उस स्थान में सचमुच गंगा का प्रवाह उलटी दिशा में बह रहा था। कुछ इतिहासकारों ने यह भी लिखा है कि सद्गुरु रविदास जी के माता-पिता जब अकाल चलाना कर गए तो उनका संस्कार गंगा के घाट पर ही करना था। क्योंकि बनारस के आस-पास के क्षेत्र के सभी लोग मृत शरीरों का संस्कार गंगा के किनारे ही करते थे। जहाँ रविदास जी अपने माता पिता का संस्कार करना चाहते थे, वहाँ पण्डितों ने संस्कार करने से मना कर दिया और वहाँ से कोई आधा मील दूर नीचे की ओर संस्कार करने की आज्ञा दी ।

सद्गुरु जी ने वहाँ अपने माता-पिता का संस्कार कर दिया। जब चिता ठंडी हुई तो सद्गुरु जी ने उनकी राख को गंगा में बहाया, तब गंगा माई ने अपना रुख ही बदल लिया और उलटी दिशा में बहकर आप जी के माता-पिता की राख को उस स्थान पर ले गई यहाँ सद्गुरु जी अपने माता-पिता का संस्कार करना चाहते थे। गंगा उलटी बहती देखकर राजा पहले से भी अधिक हैरान रह गया। अप्रैल 2003 में जब हम भी वाराणसी गए और गंगा के सभी घाटों को देखने का अवसर मिला तब देखा गया कि अस्सी घाट के नज़दीक थोड़े क्षेत्र में गंगा का पानी उलटी दिशा में बह रहा था। हमने नौका वाले को पूछा कि यह गंगा उलटी क्यों बह रही है, तो वह बोला, 'एक चंडाल जादूगर ने गंगा उलटी बहा दी थी ।

'पत्थरों को तैराना'

पत्थरों को पानी में तैराने से भाव है-कठोर हृदय को भी पिघला देना, अज्ञानी को ज्ञान देकर समझाना, मूढ़ व्यक्ति को भी अक्ल का धनी बनाना, असंभव को संभव बनाना, पापियों का उद्धार करना, बुराइयों का नाश करना इत्यादि। सद्गुरु रविदास महाराज जी एक ऐसी महान शक्ति हुए हैं जिन्होंने अपने ज्ञान से बड़े-बड़े अज्ञानियों की रूढ़िवादी गलत धारणाओं को जड़ से उखाड़कर उन्हें ज्ञान का सूरज दिखाया। सदियों से चली आ रहीं मानवता विरोधी धारणाओं को समाप्त कर प्रेम और समानता का मार्ग दिखाया। वे दिल जो पत्थर हो चुके थे, जिन पर गरीबों की आहों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था, उन दिलों में करूणा और दया का दीप जलाया। आधुनिक युग में लोगों का मानना है कि सद्गुरु रविदास महाराज जी ने पत्थर दिलों का उद्धार किया, उन्हें संसार रूपी भवसागर से पार करवाया। इसी लिए आप को 'पत्थरों को तारने वाला' कहा जाता है। लेकिन इतिहास की अनेक पुरातन श्री गुरु रविदास जन्म साखियाँ इस बात की भी गवाह हैं कि जहाँ महाराज जी ने पत्थर दिलों का कल्याण किया, वहाँ सचमुच पत्थरों को भी पानी में तैराया था ।

प्रो० जसबीर सिंह साबर, चेयरमैन, श्री गुरु रविदास चेयर ने अपनी पुस्तक गुरु रविदास गाथा के पृष्ठ नं 101 पर और संत दरबारी दास अबोध में लिखा है :-

रविदास ने ठाकुर लेकरि डारिउ सरता माहिं।
मुरगई जिउ तर फिरिउ बामन देखि रिसाहि ।।

(चौपाई)

मुरगई जिउ जल महि फिरै।
भगति हेत हरि क्रीड़ा करै।
सिआम कवल जिउ देखि दिखाई।
मानो आखिअन पुतरी सिआम सुहाइ ।।
राजो देखि बहुत सुख पावै।
बामन सगले अधिक खिसावै ।।
चुगल खोर मूंह काला भइआ।
रविदास भगति का आदर रहिआ।।
तब रविदास भगति बुलाइया। प्रेम मगन हरि दउरिआ आइया ।।

जब हर प्रकार से पण्डितों की शिकायत को महाराज जी ने अपनी भक्ति से राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल की भरी कचहरी में झूठा साबित करके पण्डितों के नाकों चने चबवा दिए तो विवश पण्डित एक और बहाना बनाकर रविदास महाराज जी को नीचा दिखाने का असफल प्रयत्न करने लगे। वे कहने लगे - 'राजा! हम जब ठाकुरों को गंगा में स्नान करवाते हैं तो रविदास अपनी चमड़े वाली पत्थरी को भी गंगा में स्नान करवाता है जिससे गंगा माँ इनसे सख्त नाराज़ हैं और हमारे ठाकुर जी भी नाराज़ हैं। जिस पत्थरी पर रविदास चमड़ा काटता है, उस पत्थरी को गंगा जल में स्नान करवा कर एक तो गंगा को अपवित्र करता है। दूसरा ठाकुर जी भी दूषित हो जाते हैं। इससे हमारा जीवन भी नष्ट हो जाएगा। अतः राजा! रविदास को ऐसा करने के लिए मना करें। राजा ने

फिर सद्‌गुरु जी से विनती की कि वह पण्डितों की बात मान जाएं और अपनी पत्थरी को गंगा में स्नान न करवाएं।

सद्‌गुरु रविदास जी ने सोचा कि यह विप्र ऐसे मानने वाले नहीं हैं। उनको कुछ करके दिखाना ही पड़ेगा। सद्‌गुरु जी राजा को कहने लगे कि राजा! इस कार्य का फैसला गंगा माई स्वयं ही करेंगी कि वह किससे प्यार करती है-रविदास जी की पत्थरी से या पण्डितों के ठाकुरों से। राजा कहने लगा, 'यह कैसे पता चलेगा? रविदास जी बोले, जिनसे प्यार होगा उनके ठाकुर गंगा में तैर जाएंगे और जिनसे गंगा नाराज़ होगी, उनके ठाकुर डूब जाएँगे। पण्डित बोले कि राजा ! कभी पत्थर भी पानी में तैर सकता है! रविदास हम सब को गुमराह कर रहा है। झूठी बातें करके अपनी बात को सही बताना चाहता है। पर राजा को अब महाराज की शक्ति पर पूर्ण भरोसा था। वह मन ही मन उनके नूरी स्वरूप को निहार रहा था। राजा गुरु जी का यह चमत्कार सभी को दिखाना चाहता था। राजा ने सभी को अपने-अपने ठाकुरों सहित गंगा के किनारे आने का आदेश दे दिया।

महाराज ने लगभग तीन मन की पत्थरी तट पर रखी। राजा ने कहा कि सभी अपने-अपने ठाकुरों को पानी में तैराओ। पण्डित बोले कि राजा, पहले रविदास को कहो कि वह अपनी पत्थरी पानी में डालें। विप्र जानते थे कि यदि रविदास की पत्थरी ही पानी में नहीं तैरेगी तो हमारी बारी कैसे आएगी? सद्‌गुरु जी को पहले पत्थरी तैराने के लिए कहा गया। आप जी ने परम पिता परमात्मा के आगे करबद्ध प्रार्थना की, शीश झुकाया और पत्थरी को गंगा के जल में बहा दिया। गंगा माता ने पत्थरी को अपने हाथों से उठाया और मन ही मन मुस्कुराने लगी कि आज सद्‌गुरु महाराज जी द्वारा दी गई सेवा पाकर मैं धन्य हो गई हूँ। महाराज जी के आदेश अनुसार पत्थरी पानी में तैरती रही। चारों तरफ सद्‌गुरु रविदास जी की जय-जयकार होने लगी, आप की महिमा का गुणगान होने लगा लेकिन विप्रों का मन डोलने लगा। माथे से पसीने छूटने लगे, उनकी पोल खुलने का समय आ गया। अब उनकी बारी थी पत्थर तैराने की। सभी ने बारी-बारी रूई में लपेट कर अपने ठाकुर पानी में डाले। रूई पानी में भीग गई और पत्थर डूबते गए। सभी लोग यह दृश्य देख रहे थे। राजा कहने लगा विप्रो ! देखो अब आप हर प्रकार से झूठे सिद्ध हुए हो। अपने पाखण्डों से आप ही पर्दा उठा रहे हो और फिर भी आप अपने को परमात्मा समझते हो, अपने को ऊँच कहते हो? अब आप ही बताओ कि रविदास महान है या आप?

इस प्रकार सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने उलटी गंगा बहाकर और पत्थरों को पानी में तैराकर, धार्मिक क्रान्ति से लोगों को बताया कि हम सब एक हैं और हम सब का एक ही मालिक हैं। उसके सामने कोई छोटा-बड़ा नहीं है। सभी को मालिक की भक्ति करने का अधिकार है। यह जाति-पाति मानव के बनाए हुए हैं। आप जी के ऐसे महान विचारों के कारण ही सद्‌गुरु सभी वर्षों में प्रसिद्ध हुए।

राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल का गुरु जी से दीक्षा प्राप्त करना

जेता समुंद सागर नीर भरिया, तेतै औगुण हमारे। दया करो कुछ मेहर उपाओ, डुबदे पत्थर तारे।

जब पण्डितों के कहने पर सद्गुरु रविदास महाराज जी को राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल ने अपनी कचहरी में बुलाया और सद्गुरु जी ने अपना सीना चीर चार युगों के जनेऊ भरी सभा में दिखाकर सभी को आश्चर्य चकित कर दिया, अपना खून बहा कर यह सिद्ध कर दिया कि सभी के खून का रंग लाल होता है। अतः सभी बराबर हैं, कोई भी ऊँच या नीच नहीं है, और फिर भी जब पण्डितों को महाराज जी की शक्ति का अहसास न हुआ, पण्डितों की अज्ञानता का पर्दा न हटा तो सद्गुरु रविदास जी ने उलटी गंगा बहाई, पत्थरों को पानी में तैराया, वे सभी असम्भव कार्य कर दिखाए जो विप्रों की सोच में भी नहीं थे। उन लोगों को ज्ञान दिया जो पत्थर दिल थे, जो कभी पिघलने वाले नहीं थे, वे दिल मोम बना दिए। वह राजा जो कभी पण्डितों के पक्ष में था और उनकी धमकियों से भी डरता था, अब सद्गुरु के कौतुक और तर्कयुक्त ज्ञान को देखकर भी समझ गया था कि सद्गुरु अवश्य कोई इलाही नूर हैं। उसे पता चल गया था कि सद्गुरु कोई अलौकिक शक्ति हैं। जिसने

अपनी शक्ति से बड़े से बड़े पण्डितों को भी झुकने के लिए विवश कर दिया है, पण्डितों के खोखले ज्ञान का भाण्डा फोड़ दिया है। ऐसी इलाही ज्योत अगर मुझे अपने चरणों से लगा ले तो जन्मों-जन्मों के पापों से छुटकारा मिल जाएगा। इस प्रकार राजा दिन-रात सद्गुरु के प्रेम में बँधने लगा। योग्य समय पाकर राजा सद्गुरु के चरणों में प्रार्थना करने लगा 'महाराज ! बख्शिश कीजिए। इस तुच्छ पर भी कृपा कीजिए, अपना दास बना लीजिए। मेरा उद्धार कर दो, तांकि मैं भी इस भवसागर से पार हो सकूँ।

जेता समुंद सागरु नीरि भरिया तेते अउगण हमारे ।
दइया करहु कछु मिहर उपावहु डुबदे पथर तारे ।।
(पृष्ठ संख्या 771)

'हे मेरे मालिक! मुझ में बेशुमार अवगुण हैं, मैं विकारों से भरा हूँ, कृपानिधि ! मुझ पर मेहर करो, दया करो, मुझे नाम की दात बख्श दो। आप ने डुबते हुए पत्थरों को तैरा दिया है, ऐसे ही मेरा भी पार-उतारा कीजिए।' राजा की बात सुनकर महाराज जी कहने लगे कि राजा! गुरमुख बनना सहज कार्य नहीं है। गुरमुख का रास्ता तेज़ खण्डे की धार के समान है जिस पर चलते समय बड़े ध्यान की ज़रूरत होती है। पल-पल कड़ी परीक्षाओं में से गुज़रना पड़ता है। राजा! फूलों की सेज को त्याग कर, काँटों की सेज पर सोना पड़ता है। तुम तो ठाठ का जीवन बिता रहे हो, दुनिया के सभी मान-सम्मान, सुख-समृद्धि तुझे मिल रहे हैं, इसलिए एक राजा के लिए गुरमुख बनना बहुत कठिन कार्य है। तुझे भोग-विलास को छोड कर योग का रास्ता अपनाना होगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार (अहम्) से मन को बचाना पड़ेगा, जिसमें सभी संसारी जीव डूबे हुए हैं।

काम क्रोध माया मद मतसर
इन पंचहु मिलि लूटे

(973)

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने बताया कि राजा, सच्चा गुरमुख बनने के लिए स्वयं में से "मैं" को खत्म करना पड़ेगा। अपने आप को उस मालिक के प्रति समर्पित करना पड़ेगा। जहाँ "मैं" होगी, वहाँ उस मालिक का निवास नहीं हो सकता और जहाँ उस प्रभु का वास हो जाता है, वहाँ "मैं" का नाश हो जाता है।

जब हम होते तब तू नाही अब तूही मै नाही।।
अनल अगम जैसे लहरि मइ ओदधि जल केवल जल मांही ।।

सभी अवगुणों को, संसारी मोह-माया को त्याग कर चित्त उस मालिक की ओर लगाना पड़ेगा, बाहरमुखी वस्तुओं का चिन्तन छोड़ प्रभु का चिन्तन हर श्वास से करना होगा। यह जो हमारे नेत्र बाहरी दुनियावी रंग-तमाशे देखकर उसी में मस्त हो जाते हैं, उन नेत्रों में सद्‌गुरु की रुहानी तस्वीर को बसाना होगा। फिर न तुम किसी का चिन्तन कर सकते हो, न किसी अन्य को देखने की इच्छा ही होगी।

नैनों अंदर आउ तू नैन डांप तोहि लूँ
न मैं देखौं और को नाँ तोहि देखण दूँ ।।

हमारे कान जो झूठ, चुगली, निन्दा और कई प्रकार के झूठ के गीतों को सुनने में मग्न रहते हैं, इन्हें केवल अपने अन्दर हो रहे अनहद शबद की ध्वनि ही सुनानी होगी। अपने तन-मन का भोग उस प्रभु को लगाना होगा। सद्‌गुरु की रहमत और रज़ा में रहकर उस मालिक के नाम का यश गाना पड़ेगा।

चित सिमरनु करउ नैन अविलोकनो। स्रवन बानी सुजसु पूरि राखउ।
मनु सु मधुकरू करउ चरन हिरदे घरउ,
रसन अंम्रित राम नाम भाखउ।

(पृष्ठ संख्या 694)

राजा का मन और तन सद्‌गुरु का हो चुका था। सद्‌गुरु के प्रवचनों को सुनकर राजा की आँखें भर आई। विनम्र भाव से राजा विनती करने लगा - 'प्रभु! जब आप की कृपा दास पर हो जाएगी, मुझे आप अपने चरणों में लगा लेंगे, तो सभी कुछ जो अभी असंभव लग रहा है, संभव हो जाएगा। प्रभु !

जब गंगा उलटी बह सकती है, पानी में पत्थर तैर सकते हैं, तो जब आप की कृपा मुझ पर हो जाएगी तो क्या मैं अवगुणों से छुटकारा नहीं पा सकूँगा? बस, अब जल्दी करो, मुझ गरीब को भी नाम की दात बख्श दो। जिस प्रकार मछली जल के बिना तड़पती है, मेरा मन भी प्रभु-मिलन को तड़प रहा है, अब देर मत कीजिए।

सद्गुरु जी ने देखा कि अब राजा गुरमुख बनने के योग्य हो गया है, तो सद्गुरु रविदास महाराज जी ने राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल को नाम की दात बख्श दी, उसे सीने से लगा लिया। राजा अखण्ड नाम की दात पाकर प्रसन्न हो गया।

सद्गुरु की महिमा, अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार ।।

राजा और उसका परिवार सदा-सदा के लिए गुरु-चरणों से जुड़ गया।

राजा हरदेव नागर मल्ल द्वारा सत्संग का आयोजन

खोद खाद धरती सहे कूट काट वनराय
कुटिल वचन साधु सहे और से सहा न जाय ।।

जब राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल पर प्रभु की कृपा हो गई, उसने सद्गुरु रविदास महाराज जी को अपना गुरु बना लिया, गुरु-चरणों की छोह प्राप्त हो गई तो कुछ समय बाद राजा के मन में सोच आई कि क्यों न गुरू महाराज जी के चरण अपने गृह में डलवाएं जाएँ। क्योंकि वह जगह पवित्र हो जाती है यहाँ उनके चरण पड़ते हैं। गुरुवाणी में भी लिखा है :-

जित्थे जाय बहे मेरा सतगुरु सो थांव सुहावा राम राजे ।

जिस स्थान पर संत महापुरुषों के चरण पड़ जाते हैं, संतों का सत्संग हो जाता है, वह जगह और वे लोग पूजा के योग्य हो जाते हैं। गुरु का स्थान भगवान के बराबर होता है। सर्व प्रकार से समर्थ गुरु से परिचय हो जाने पर समस्त सांसारिक और मानसिक दुख नष्ट हो जाते है। आत्मा निर्मल होकर प्रभु भक्ति में तल्लीन हो जाती है।

अतः गुरु की महिमा अनंत और अवर्णनीय है। जब संत महात्माओं और साधुओं की संगति मिल जाती है तो मनुष्य के सारे कर्म अपने आप सिद्ध होते चले जाते हैं।
जिस प्रकार चंदन के पास उगा हुआ ढाक-पलास, इरंड भी चंदन हो जाते हैं, उसी प्रकार साधु-संगति बुरे व्यक्ति को भी अच्छा व्यक्ति बना देती है।

यह संसार काजल की कोठरी के समान है, जिसकी सीमाएँ विषय तथा वासनाओं से घिरी हुई हैं। इन सीमाओं को लांघने का अर्थात विषय तथा वासनाओं से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय साध-संगति ही है।

इन सभी बातों को सोचकर राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल ने गुरु-चरणों में विनती की 'हे प्रभु! अपने चरण डालकर हमारे गृह को भी पवित्र कीजिए।' सद्गुरु जी ने राजा की विनती स्वीकार कर ली। समय निश्चित कर लिया गया। राजा इन्तज़ार करने लगा कि कब वह शुभ घड़ी आएगी। सभी विद्वान पण्डितों को यज्ञ के लिए निमंत्रण भेज दिया गया। भण्डारे की तैयारियां होने लगीं। पूरे काशी शहर में संदेश पहुँचा दिया गया। आखिर वह भाग्यशाली घड़ी आ गई। बहुत ही सुंदर सिंहासन तैयार किया गया। दूर-दूर से पण्डित, राजा के शाही महल में पहुँच गए। सभी बहुत प्रसन्न मुद्रा में थे क्योंकि उन्हें राजा के घर भण्डारे पर बुलाया गया था। सोच थी कि राजा के संग बैठ कर हमारी भी महानता बढ़ेगी और राजा अपने हाथों से हमें दान-दक्षिणा देगा। भण्डारे का शुभ दिन आने पर पूरा पण्डाल दूर-दूर से चलकर आई संगत और राजकुमारों से भर गया।

उधर सद्गुरु रविदास जी भी आ पहुँचे । गुरु आगमन देख कर राजा खुशी से फूला नहीं समा रहा था। राजा ने सारे महल में गुरु के चरण डलवाएं, स्वागत किया और पण्डाल में पधारने की विनती की। पण्डितों की आँखें तब गढ़ी ही रह गई जब राजा ने हाथ जोड़ कर गुरु को सुसज्जित सुंदर ऊँचे सिहांसन पर बैठने की प्रार्थना की। सद्गुरु सिंहासन पर विराजमान हो गए। सद्गुरु को

राजा के सिंहासन पर विराजमान देख कर सभी पण्डितों के कलेजे पर साँप लौटने लगा। यह सब कुछ देख सभी पण्डित आग बबूला हो गए। जब पण्डितों का गुस्सा आपे से बाहर हो गया, उनसे सद्गुरु को दिया हुआ आदर सम्मान सहन न हो सका तो उनकी ईर्ष्या होठों से बाहर आ गई, सब्र का बाँध टूट गया तो कहने लगे कि राजा! यह कौन सा नाटक खेला जा रहा है?

हम यह नाटक देखने नहीं आए। यदि इस नीच को ही तूने सिहांसन पर बिठाना था तो हमें बुलाने की क्या आवश्यकता थी? तू जानता नहीं कि हमारी मनुस्मृति में कहा गया है कि नीच व्यक्ति का मुख देखने से बाह्मण भ्रष्ट जाता है और जिस व्यक्ति को नाम जपने की भी इजाजत नहीं है, तुम उसे अपना गुरु बना रहे हो और हमारे से ऊँचे सिहांसन पर बिठाकर उसके मुँह से हमें ज्ञान की बातें सुना रहे हो। राजा! तेरी बुद्धि को क्या हो गया है? यदि एक चमार ने चार ज्ञान की बातें बता ही दीं या चार युगों के जनेऊ दिखा ही दिए, पर है तो वह नीच ही न। राजा! हमारी बात ध्यान से सुन ले, या तो इस शूद्र को ऊँचे सिहांसन से उतार कर इसे पण्डाल से बाहर निकाल दे, नहीं तो हम यहाँ से बिना भोजन किए ही चले जाएँगे और तुझे अभिशाप देंगे। पहले तो राजा इन पण्डितों की बातों में आ जाया करता था क्योंकि उस समय राजा ने सद्गुरु रविदास जी को अपना गुरु नहीं माना था और गुरु के बिना पूर्ण ज्ञान संभव ही नहीं है ।

भबी भई जुगुर मिल्या
नहीं तर होती हानि ।
दीपक दिष्टि पतंग
यूं पहुँता पूरी जांणि ।

राजा अब गुरमुख बन गया हुआ था। गुरु की अपार कृपा से वह पण्डितो के स्वार्थी स्वभाव को समझ चुका था और मनु स्मृति के संकीर्ण विचारों का ज्ञान उसे भली भांति हो चुका था। अलगवाद एवं जाति भेद - भाव आदि बताकर ये पण्डित अपना रोज़गार चलाते रहे परंतु अब उनकी चोचली बातें मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। अतः राजा अपने गुरु की निंदा सहन न कर सका। सद्गुरु के चरणों में जाकर क्षमा मांगते हुए राजे ने कहा 'महाराज! यदि आप आदेश करें तो मैं इन सभी को जेल में बन्द करवा दूँ या भरी सभा में से बाहर निकाल दूँ।'

दीनबंधु, दया के सागर, मेहरों के मालिक सद्गुरु रविदास जी बड़े ही शांत स्वभाव से बोले, 'राजा! क्रोध में नहीं आना क्योंकि इसमें इन विप्रों का भी कोई दोष नहीं है। इनको तो शिक्षा ही ऐसी मिली हुई है। समाज को बाँट कर अपनी रोजी-रोटी चलाते रहना, लड़ाई-झगड़े करवा कर अपनी अहमियत बनाना आदि का सबक ही तो उन्होंने पढ़ रखा है। इसलिए राजा ! ऊँच-नीच, समानता आदि की बातें इन की समझ में नहीं आएंगी। इन्हें समझाना तो भैंस के आगे बीन बजाने के समान है। सद्गुरु रविदास जी कहते हैं कि इन सब को आदर सहित बिठा कर भोजन करवाइए। यदि ये मुझ से घृणा करते हैं तो मैं एक तरफ होकर बैठ जाता हूँ। राजा सद्गुरु की नम्रता को देखता जा रहा था और सोचने लगा किसी ने ठीक ही ऐसे संत महापुरुषों के बारे में कहा है :

खोद खाद धरती सहे कूट काट वनराय,
कुटिल वचन साधु सहे और से सहा न जाय ।।

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने दरबार में बैठे पंडितों को संबोधित करते हुए कहा कि मैं सिंहासन से उतर जाता हूँ लेकिन मुझे मेरे सवाल का जवाब दीजिए यदि ऊँच-नीच या कोई भेद-भाव की मान्यता है तो फिर भगवान श्री राम ने शबरी जो भील जाति से संबंध रखती थी, उसके जूठे बेर क्यों खाए थे? जब पंपासर तालाब का पानी अशुद्ध हो गया था तो उसे पवित्र करने के लिए शबरी के चरणों को धो कर पानी क्यों डाला गया था? पानी केवल उसके चरणों के जल से ही पवित्र क्यों हुआ ? उच्च जाति से संपर्क रखने वाले अनेक ऋषि-मुनियों के चरण धोने से पंपासर तालाब का जल पवित्र क्यों नहीं हुआ? फिर शबरी द्वारा पवित्र किए गए जल को आप लोगों ने कैसे पी लिया? उससे ऊँचे लोगों का धर्म भ्रष्ट क्यों नहीं हुआ? याद रखें कि मालिक एक है और हम सभी उस मालिक की औलाद हैं। सभी में उस मालिक का ही अंश है। कोई बड़ा-छोटा नहीं है और उस परमपिता परमात्मा के बनाए हुए सभी मानव महान एवं उच्च रचना हैं।

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी यह सब कुछ कहकर एक तरफ हो कर बैठ गए। राजा ने अपने नौकरों को आदेश दिया कि वह इन सभी पंडितों को भोजन करवा दें और राजा स्वयं सद्‌गुरु की सेवा में लग गया। जब पंडितों को भोजन परोस दिया गया तो सभी को ऐसा अनुभव होने लगा कि उनके सामने बैठे प्रत्येक पण्डित के साथ सद्‌गुरु रविदास जी भोजन कर रहे हैं।

सभी पण्डित एक दूसरे से पूछने लगे कि आप सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के साथ बैठ कर भोजन कर रहे हो? एक पण्डित कहता है कि रविदास महाराज जी आपके साथ बैठे हैं। तो दूसरा कह रहा था कि नहीं, रविदास महाराज जी आप के साथ बैठे हैं। सब तरफ शोर होने लगा। रविदास महाराज जी सभी के साथ बैठकर भोजन कर रहे थे। पण्डितों को मन ही मन यह अनुभव हो गया कि सद्‌गुरु जी तो हम सब के साथ हैं और जिनसे हम दूर रहने की कोशिश कर रहे हैं, वह तो हमारे बीच में बैठकर भोजन कर रहे हैं। उन पंडितों की अज्ञानता का पर्दा दूर हो गया, जिससे मानवता का संचार होने लगा था।

अहंकारी लोगों का मान टूट गया और वह सद्‌गुरु जी के चरणों में आ गिरे। पहले जो पंडित सद्‌गुरु जी को सिंहासन से नीचे उतारने की बात कर रहे थे, अब वे सद्‌गुरु के चरणों में शीश झुकाकर माफी मांग रहे थे। यह चमत्कार देखकर राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। सद्‌गुरु जी की लीला को देखकर राजा फूला नहीं समाया। उसी समय राजा ने हीरों से जड़ित रथ मंगवाया और सद्‌गुरु रविदास महाराज जी को उस में बिठाकर पूरे बनारस में झाँकी के रूप में लोगों के समक्ष ले गए।

सभी लोग गुरु जी के दर्शन कर धन्य हो गए। सारे पंडित श्री गुरु रविदास जी की महिमा का गुणगान करते जा रहे थे। कोई ढोलकी बजा रहा था तो कोई शबद गा रहा था। सभी श्री गुरु रविदास महाराज जी का यश गा रहे थे। राजा स्वयं महाराज जी को चंवर झुला रहा था। यह सब कुछ देखकर सद्‌गुरु जी उस मालिक का गुणगान करते हुए इस शबद का उच्चारण करने लगे :-

ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै।
गरीब निवाजु गुसईआ मेरा माथै छत्रु धरै ।।१ । ।रहाउ ।।
जा की छोति जगत कउ लागै ता पर तुहीं ढरै।

नीचह ऊच करै मेरा गोबिंदु काहू ते न डरै ।।१।।
नामदेव कबीरु तिलोचनु सधना सैनु तरै।
कहि रविदासु सुनहु रे संतहु हरि जीउ ते सभै सरै ।। २ । । १ ।।

शिकारी को ज्ञान देना

म्रिग मीन भ्रिंग पतंग कुंचर एक दोख बिनास।
पंच दोख असाध जा महि ता की केतक आस ।।

सद्गुरु रविदास महाराज जी जगत् के कूड़ को मिटाते हुए, दुखियों का दुःख दर्द हरते हुए और अज्ञानियों को ज्ञान देते हुए समय व्यतीत करते चले जा रहे थे। सिमरन को एकमात्र उद्देश्य मान कर प्रभु-भक्ति में लीन रहते। एक दिन सद्गुरु महाराज जी सोचने लगे कि क्यों न किसी एकांतवास में प्रभु का सिमरन किया जाए क्योंकि सिमरन जितना एकांत में किया जाए उतना ही फलदायक होता है। इसीलिए महात्मा जन जंगलों व पहाड़ों में तपस्या के लिए जाते थे। जंगलों में जाने से उनका भाव यह नहीं था कि वहाँ प्रभु रहते हैं बल्कि जंगलों में इसलिए जाते थे कि वे इस सांसारिक शोर से दूर प्रकृति की गोद में बैठकर, एकाग्र चित्त होकर उस मालिक के साथ तारम्य हो सके, जहां केवल प्रभु और उसका भक्त ही हो। तभी तो किसी ने कहा है :-

दस्सीं मेरे मालिका कोई ऐहो जेही थां जित्थे तेरा बैठ के मैं भजन करां। जित्थे दुनिया दा कोई शोर ना होवे,

गल्ल तेरे बिना कोई होर ना होवे ।

इसी उद्देश्य से सद्गुरु रविदास महाराज जी एकांतवास की ओर निकल पड़े। अंत में एक जंगल में एक तालाब के पास पहुँचे जहां बिल्कुल शांति थी, प्राकृतिक वातावरण था। निःसन्देह उस स्थान पर आज घनी आबादी है, पर सद्गुरु रविदास महाराज जी के समय वाराणसी का यह क्षेत्र पूरी तरह एकांतमय था। सद्गुरु कबीर जी भी इसी स्थान में एक तालाब से नीरू को प्राप्त हुए थे। इस तालाब को लहरतारा नाम से जाना जाता है। यहां आकर सद्गुरु रविदास महाराज जी प्रभु सिमरन में लग गए। एक दिन अचानक वहां एक शिकारी आ पहुँचा। उसने जानवरों के शिकार हेतु वहां जाल बिछा दिया और मधुर संगीत की ध्वनि निकालने लगा। इस मधुर संगीत की आवाज़ ऐसी होती है कि जिस ओर से भी आती, हिरण उसी तरफ चल पड़ते और जाल में फंस जाते। उस दिन जब शिकारी ने बाजा बजाया तो इस आवाज़ को सुनकर एक हिरणी जो कि अपने बच्चे को दूध पिला रही थी, उसी ओर चल पड़ी। आवाज़ का पीछा करते-करते वह वहाँ पहुँच गई जहां शिकारी ने जाल बिछा रखा था। वह हिरणी कान-रस के कारण उस जाल में फँस गई। शिकारी को शिकार मिल गया और उसने संगीत बजाना बंद कर दिया। हिरणी वास्तविकता को समझ गई परंतु अब वह कुछ भी नही कर सकती थी। अनजान हिरणी जाल से छुटकारा पाने की कोशिश करने लगी, पर शिकारी ने उसे बहुत बुरी तरह बांध दिया। हिरणी छटपटाने लगी। अपनी जान बचाने के लिए हाथ-पैर मारने लगी परंतु निर्दयी शिकारी को उस पर दया नहीं आई। जब हिरणी ने दर्द भरी आवाज़ से चिल्लाना शुरु किया तो उसकी करुण आवाज़ को सुनकर सद्गुरु रविदास महाराज जी की समाधि खुल गई। महाराज जी भी उधर चल पड़े जहां से आवाज़ आ रही थी। महाराज जी ने देखा कि एक हिरणी को शिकारी ने बांध

रखा है और हिरणी की आँखों से नीर बह रहा है। हिरणी के शरीर की रचना से पता चल रहा था कि वह दो बच्चों की माँ है। उसके दोनों थनों में से दूध निकल रहा था। माँ की ममता उमड़ रही थी, उसकी ममता में दोनों बच्चों की तड़प थी। कहा जाता है कि 'पूर्ण भक्त' जब अपनी अंध पी मां 'इच्छरां' को बहुत देर के बाद मिला तो अपने पुत्र की आवाज़ सुनकर माँ के आँचल में दूध भर आया था। यह माँ की ममता का प्रतीक है। जब सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने उस विवश माँ को देखा तो उन्होंने शिकारी से प्रार्थना की कि वह हिरणी जो कि अपने बच्चों को मिलने के लिए तड़प रही थी, को छोड़ दे। वह अपने बच्चों को दूध पिला कर वापस आ जाएगी। लेकिन शिकारी ने सद्‌गुरु की एक न मानी। तब सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने शिकारी को ज्ञान देते हुए इस शबद का उच्चारण किया :

म्रिग मीन भिंग पतंग कुंचर एक दोख बिनास ।

पंच दोख असाध जा महि ता की केतक आस ।।१।।

माधो, अबिदिआ हित कीन। बिबेक दीप मलीन । । १ । । रहाउ ।।

त्रिगद जोनि अचेत संभव पुंन पाप असोच ।

मानुखा अवतार दुलभ तिही संगति पोच । । २ ।।

जीअ जंत जहा जहा लगु, करम के बसि जाइ

काल फास अबध लागे कछु न चलै उपाइ ।।३।।

रविदास दास, उदास तजु भ्रमु तपन तपु गुर गिआन ।

भगत जन भै हरन परमानंद करहु निदान । ।४ । ।१ ।।

(आदि ग्रन्थ पन्ना 486)

सद्‌गुरु महाराज जी शिकारी को समझाते हुए कहते हैं कि, 'हे मानव ! त्रिगद जूनों में केवल एक-एक विकार है। जैसे हिरण को कानों का रस, मछली को जिह्वा का, भंवरे को फूलों पर बैठकर उसका रसपान करने का विकार है, परवाने को आँखों का विकार है जिस कारण वह शमां पर जल मरता है। हाथी में काम-तृष्णा का विकार होता है। इसी अटल सच्चाई का वर्णन करते हुए सद्‌गुरु रविदास महाराज जी फरमाते हैं कि उनमें एक-एक दोष होने के कारण उनका नाश हो जाता है। पर मानव में तो पाँचों विकार एक साथ पाए जाते हैं, तो तुम ही बताओ कि जिस मानव में पांचों विकार एक साथ पाए जाते हैं, उसका क्या होगा? अतः इन पर काबू पाना अति आवश्यक है। हे शिकारी! तुम इन त्रिगद जूनों में से श्रेष्ठ हो इसलिए दूसरों की हत्या करनी छोड़ दो। मानवता का अधिकारी बन कर इस हिरणी को मुक्त कर दो, ऐसा करने से तुम भी मुक्त हो जाओगे।

सद्गुरु रविदास महाराज जी के उपदेश को सुनकर शिकारी की आँखें खुल गई, और शिकारी ने अपना सारा सामान महाराज जी के चरणों में भेंट कर अपनी भूल के लिए माफी माँगी। महाराज! मुझे माफ कर दो। मेरी आँखों पर अज्ञानता का पर्दा पड़ गया था। मुझ पर कृपा करो, मुझे अपने चरणों में स्थान दो। जब शिकारी ने वैराग्य में आकर गुरु-चरणों में विनती की तो सद्गुरु जी ने उसकी विनती को स्वीकार किया और शिकारी को 'नाम' की बख्शिश करते हुए कहा कि, 'हे शिकारी ! तुम्हारे पिछले सभी पाप माफ किए जाते हैं, पर आगे से कभी भी कोई पाप न करना।' शिकारी गुरु जी से ज्ञान पाकर धन्य हो गया। काग से हंस बन गया। संतों की संगत से बड़े-बड़े पत्थर भी पिघल जाते हैं। पापियों का उद्धार हो जाता है। डाकू अंगुलिमाल भी महात्मा बुद्ध जी के एक वाक्य से ही सुधर गया था। यह सब भगवान रूपी संतों की अपार कृपा का ही परिणाम होता है। इसलिए तो सद्गुरु अर्जुन देव जी ने फरमाया हैः

महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता। मैलु खोई कोटि अघु हरे निरमल भए चीता ।। (पं. 809)

रूपा द्वारा सद्गुरु रविदास महाराज जी को अपना गुरु धारण करना

ते साधु हरि मेलहु सुआमी, जिन जपिआ गति होए हमारी ।।

तिनका दरसु देखि मनु बिगसै, खिनु खिनु तिन कउ हउ बलहारी।।1।।

मुल्तान (पाकिस्तान) की रहने वाली रूपा बाल्यकाल से ही प्रभु-नाम में लीन रहती थी, एक क्षण भी प्रभु के नाम को नहीं विसारती थी। सदैव इसी सोच में डूबी रहती कि मालिक ने अपने से अलग कर मानव को मृत्युलोक में भेजकर न जाने किन पापों की सज़ा दी है। उससे मिलन अब कैसे हो? यही तड़प उसे निरंतर सताने लगी। रूपा दिन-रात प्रार्थना करती- 'हे मालिक ! मुझे आकर दर्शन दीजिए, जिस प्रकार जल के बिना मीन तड़पती है, वैसे ही "मैं" अपने प्रियतम को मिलने के लिए तड़प रही हूँ। रूपा द्वारा इस सच्चे नाम की आराधना और प्रार्थना करने से आखिर मालिक प्रसन्न हुए। विनती स्वीकार हुई :-

विरथी कदे न होवई जन की अरदासि ।

जब भक्त की भक्ति और अरदास उस प्रभु को स्वीकार हो जाए, मालिक की कृपा अपने सेवक पर हो जाए तो फिर वह सेवक सभी प्रकार से समृद्ध हो जाता है, उसे किसी भी चीज़ की कमी नहीं रहती, उसे मनवांछित फल मिल जाता है और उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता है।

तभी एक दिन आकाशवाणी हुई- "रूपा, यदि तुमने उस निर्गुण, निराकार को पाना है तो तुझे किसी ब्रह्मज्ञानी पूर्ण सद्गुरु की शरण में जाना होगा। वह ही तुम्हें इस मंजिल का मार्ग बता सकता है। ऐसे पूर्ण सन्त की भाल तुम्हें करनी ही होगी जो एक संत के सभी गुणों का धारक होगा। स्वयं जिसने मालिक के दर्शन किए हों। वही तुम्हें उस मालिक से मिला सकता है।

कई बार प्रश्न उठता है कि सच्चे नाम की आराधना करने वाले को गुरु की क्या ज़रूरत है? क्या वह सीधा उस परम शक्ति के साथ नहीं जुड़ सकता? नेक कमाई करने वाला, परमात्मा का भजन करने वाला, अपने कर्त्तव्यों को निभाने वाला क्या गुरु के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता? गुरु प्रेमियो ! यदि गुरु के बिना ज्ञान संभव होता तो समाज में अवतार के रूप में पूजे जाने वाले श्री राम और श्री कृष्ण को भी अपना गुरु बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ती? जिस प्रकार हम समाज में रहकर, अच्छा नागरिक बनने के लिए किसी विद्यालय में जाते हैं, किसी अच्छे अध्यापक से तालीम हासिल करते हैं। चाहे हमारे माता-पिता बहुत पढ़े लिखे हों, उन्हें भी उस चीज़ का ज्ञान हो, लेकिन प्रत्येक विद्यार्थी को विशेष विद्यालय में जाकर विशेषज्ञों से कठोर अनुशासन में रह करके विद्या ग्रहण करनी पड़ती है। उसी प्रकार आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए भी किसी गुरु का होना आवश्यक है। कहावत भी है कि "शाह बिना पत नहीं, गुरु बिना गति नहीं"।

रूहानी विद्या प्राप्त करने के लिए सद्गुरु रूपी विशेष अध्यापक के चरणों में ज़रूर जाना पड़ता है। गुरू रामदास जी भी इसी बात को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं :-

मेरे राम हम बारिक हरि प्रभ के है इआणे।
धनु धनु गुरु गुरु सतिगुरु पाधा। जिनि हरि उपदेसु दे कीए सिआणे।

(गउड़ी 4 पृष्ठ सं. 138)

गुरु के बिना हमारे कर्म-धर्म सभी व्यर्थ हैं:-

गुरू बिन माला टेरते गुरू बिन करते दान।
गुर बिन दान हराम है जा पूछो वैद पुरान।।

तुलसीदास जी ने तो यहाँ तक कह दिया है :-

राम कृष्ण सो को बड़ा, इन्होंने गुरू कीन।
तीन लोक के नायिका गुरू आगै अधीन ।।

गुरु चाहे हमारे जैसे ही इंसान होते हैं, हमारी तरह ही इस संसार में विचरते हैं, पर वे उस मालिक के साथ जुड़े हुए होते हैं। गुरु और प्रभु चाहे दो रूप हैं पर उनकी आत्मा एक हो गई होती है। अतः सद्गुरु रविदास महाराज जी भी हमें समझा गए हैं :-

रविदासु भणै जो जाणै सो जाणु।
संत अनंतहि अंतरु नाही ।।

रूपा को भी गुरु की आवश्यकता अनुभव होने लगी और वह गुरु की तलाश के लिए चल पड़ी। संतो के प्रति जब हमारी आस्था बन जाती है तो उनके प्रति प्यार उमड़ना स्वाभाविक है। वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और फिर उस प्यार के प्रवाह को कोई भी नहीं रोक सकता। फिर उस संत को सद्गुरु के रूप में पाने के लिए मन विहव्ल हो उठता है। आकाशवाणी को सुनकर रूपा का दिल भी बेचैन हो उठता है कि कब प्रभु की कृपा से सद्गुरु के दर्शन होंगे, प्रभु मिलाप होगा :-

मेरा मन लोचै गुर दरसन ताई ।
बिलप करे चात्रिक की निआई ।।

(पृष्ठ संख्या 96)

आखिर रूपा ने जब अपने हृदय की बात अपनी एक सखी को बताई, अपने दुःख का वर्णन किया तो सखी को रूपा के हृदय की बात समझने में देर न लगी। रूपा के रोग को समझने वाली उस सखी ने कहा, 'रूपा-क्या तुम नहीं जानती कि बनारस में एक ऐसा फरिश्ता आया है जिसके दर्शन-

दीदार कर सभी के रोग भाग जाते हैं, सूखे पेड़ हरे हो जाते हैं, बेसहारों को सहारा मिल जाता है, निराश मन को नई आशा मिलती है और जिसकी अमृतवाणी सुनकर मन की मैल घुल जाती है, जिसके मुख की लालिमा देख (दिव्य ज्योति) अज्ञानता पंख लगा कर उड़ जाती है, वह

सद्गुरु रविदास, रब्बी नूर बन बनारस की धरती पर आया है। राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल, चन्द्र प्रताप, मीरा बाई, रानी झालां बाई और बड़े-बड़े पण्डित भी उनकी महानता के कारण उनकी शरण में आन पड़े हैं। जो भी उनके चरणों का सहारा लेता है. उसका उद्धार हो जाता है। रूपा! उसके करिश्मों ने तो सभी को चकाचौंध कर दिया है। उस इलाही ज्योति के चरणों में तुम भी जाकर तो देखो, तुम्हें भी सब्र-संतोष का जो अमृत वहाँ से प्राप्त होगा, उससे तेरी सारी शंकाएं दूर हो जाएँगी, संताप मिट जाएगा और तुम ब्रहममय हो जाओगे।

रूपा ने जब सद्गुरु रविदास महाराज जी की इतनी शोभा सुनी तो वह ऐसे संत महापुरुष को मिलने के लिए व्याकुल हो गई। उनके प्रति प्यार उमड़ आया। दिन-रात गुरु को मिलने के लिए आँसू बहाने लगी। उस पल का इन्तजार करने लगी जब सद्गुरु रविदास जी के दर्शन दीदार हो जाएं।

वाट दुरेड़ी कदमां तों दूर अक्खियाँ दे नेड़े है हाज़िर हजूर ।।

इधर गृहस्थी जीवन की जिम्मेदारियाँ और उधर मंजिल का दूर होना, व्यस्त दिनचर्या में से समय निकालना, इन सभी को देखते हुए रूपा बनारस कैसे पहुँचती, लेकिन जब मन में दृढ़ संकल्प हो, तीव्र चाहत हो तो रास्ते स्वयं ही बन जाते हैं। कहते हैं "जहां चाह, वहाँ राह"। चित्त की दृढ़ता हो तो मंजिल स्वयं चली आती है। प्यार से किसी को मिलने की इच्छा हो तो सभी बन्धन टूट जाते हैं। प्यार एक ऐसा प्रवाह है जो किसी के बहाए नहीं बहता और जब एक बार हमारे मन में इसकी धारा बह उठती है तो फिर दुनिया की कोई भी ताकत उसे रोक नहीं सकती। रूपा के मन में सद्गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा के कारण और विधि के विधान से एक दिन गुरु गोरख नाथ अपने कुछ शिष्यों के साथ मुल्तान पहुँचे। रूपा ने भी गोरख नाथ के आने की खबर सुनी। वह अपने साधु स्वभाव अनुसार नाथ जी के दर्शन करने गई। जब नाथ जी ने रूपा पर दृष्टि डाली तो उसके मस्तिष्क की रेखाओं को देखकर बोले- "क्या बात है देवी? बहुत परेशान नज़र आ रही हो। यह सुन्दर-सलौना रूप उदास क्यों है?" योगी नाथ जो रिद्धियों - सिद्धियों के मालिक बन जाते हैं, वे किसी के चेहरे से ही उनके दिल की बात जान लेते हैं। अतः नाथ की बात सुनकर रूपा बोली- 'नाथ जी.! मन में सद्गुरु को पाने की तीव्र इच्छा है। मुझे किसी पूर्ण संत से मिला दीजिए, जो मेरी प्रभु मिलन की प्यास को शांत करें। मुझे मालिक के साथ मिला दीजिए।

गुरबाणी में भी लिखा है :-

ते साधु हरि मेलहु सुआमी, जिन जपिआ गति होइ हमारी ।।
तिन का दरसु देखि मनु बिगसै, खिनु खिनु तिन कउ हउ बलहारी ।। 1 ।।
हरि हिरदै जपि नामु मुरारी ।।
क्रिपा क्रिपा करि जगत पित सुआमी हम दासनि दास कीजै पनिहारी।। 1 ।। रहाउ ।।
तिन मति ऊतम तिन पति ऊतम, जिन हिरदै वसिआ बनवारी ।।
तिन की सेवा लाइ हरि सुआमी, तिन सिमरत गति होइ हमारी।। 2 ।।
जिन ऐसा सतिगुरू साधु न पाइआ, ते हरि दरगह काढै मारी।।
ते नर निंदक सोभ न पावहि, तिन नक काटे सिरजनहारी । ।3।।
हरि आप बुलावै आपे बोलै, हरि आप निरंजनु निरंकार, निराहारी।।
हरि जिस तू मेलहि सो तुधु मिलसी, जन नानक किआ एहि जंत विचारी ।।4।।

(भैरउ महला 4 घरु 2)

रूपा की बात सुनकर नाथ जी बोले- 'रूपा ! तुझे जिस भी रिद्धि - सिद्धि की ज़रूरत है, मुझे बता। मेरे होते हुए तुम्हें चिन्ता किस बात की?

"रूपा बोली-महाराज जी! मुझे सिद्धियों की ज़रूरत नहीं है और न ही मुझे किसी तंत्र-मंत्र की आवश्यकता हैं। मुझे धन-दौलत एवं भोग-विलास की सामग्री भी नहीं चाहिए। मुझे ऐसी माया के जंजाल में नहीं फँसना है जो जीव को मकड़ी की तरह अपने ही बनाए हुए जाले में फँसा ले। मुझे तो केवल ऐसे सच्चे नाम की ज़रूरत है जिसका सिमरन करके इंसान का उद्धार हो जाता है, मानव जीवन सफल हो जाता है। रिद्धियों-सिद्धियों को पाकर तो व्यक्ति अंहकारी बन जाता है। सभी को अपने वश में करने की कोशिश करता है। स्वयं को ही मालिक समझने लगता है। लेकिन मुझे तो केवल उस मालिक की शरण चाहिए। रूपा की ज्ञान भरी बातें सुनकर योगी नाथ क्रोधित हो उठे। कहने लगे- "जिन रिद्धियों-सिद्धियों को पाने के लिए बड़े-बडे तपस्वी अपना पूरा जीवन बिता देते हैं। जिन्हें पाने के लिए राजा-महाराजा भी तरसते हैं, जिन रिद्धियों को पाने के लिए अनेक बड़े-बड़े प्रतापी मेरे शिष्य बन गए, उसे ठुकरा कर रूपा, तुमने मेरा अपमान किया है। मेरी तपस्या को ललकारा है। अब मैं देखता हूँ-कौन है ऐसा माई का लाल जो परमात्मा को पकड़ कर तेरी हथेली में रख देगा, जो तुम्हें साक्षात भगवान के दर्शन करवा देगा? पर प्रभु-प्रेमी रूपा को अपनी सखी पर अटल विश्वास था।

उसने काशी जाने का पक्का निश्चय कर ही लिया। जब रूपा काशी के लिए रवाना हुई तो पीछे-पीछे गोरख नाथ भी सूक्ष्म रूप में चल पड़े। उनका रूप अदृश्य था, क्योंकि नाथ-पंथी अपनी तपस्या से ऐसी सिद्धियां हासिल कर लेते हैं जिससे वे अपने आप को सूक्ष्म स्थिति में बदल कर कोई भी रूप धारण कर सकते हैं। गुरु गोरख नाथ ने भी इसी सिद्धि का प्रयोग कर सूक्ष्म रूप धारण किया तांकि पता लगा सके कि रूपा किसके पास जा रही है? काफी लम्बा फासला तय कर जब रूपा बनारस पहुँची तो उसने सद्गुरु रविदास महाराज जी के निवास स्थान का मार्ग पूछा और गुरु जी के आश्रम में पहुँच गई। सद्गुरु को वहाँ पाकर रूपा ने शीश झुकाया। महाराज जी की मीठी वाणी का रसास्वादन किया और मंत्रमुग्ध होकर वहां बैठी रही। संगत गुरु-दर्शन कर, प्रवचन सुन कर, अपने घरों में लौट गई लेकिन अकेली रूपा को वहाँ बैठे देख सद्गुरु रविदास जी बोले-"बेटी, आप कहाँ से

आई हो, और तुम्हें क्या काम है? रूपा ने विनम्रता सहित महाराज जी को प्रणाम किया और कहा- महाराज, मैं मुल्तान से चलकर आप की शरण में आई हूँ, प्रभु! मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिए। गुरु जी कहने लगे कि मुल्तान तो यहाँ से बहुत दूर है, क्या तुझे वहाँ पर कोई ऐसा महापुरुष नहीं मिला जिसे तुम अपना गुरु बना सकती? मैं तो एक नीच कहलाई जाने वाली चमार जाति में पैदा हुआ हूँ। जिसे स्वर्ण जाति वाले घृणा की नज़र से देखते हैं। ऐसे व्यक्ति को यदि तुमने गुरु धारण कर भी लिया तो लोग तुम्हारा जीना मुश्किल कर देंगे।

शायद तुझे पता नहीं कि रानी झालां बाई, मीरा बाई जो मेरी शरण में आईं थीं, उन्हें समाज में रहकर कितने कष्ट सहने पड़ रहे हैं, लोग उन्हें जान से मारने की कोशिश करते हैं। अतः लोग तेरा भी यही हाल करेंगे। तुझे भी सगे-संबंधियों के ताने सुनने पड़ेगे। इसलिए तुम कोई ऐसा संत ढूँढों जिसे तुम्हारे घर वाले और यह संसार स्वीकार कर सके। रूपा बोली- 'महाराज, मुझ पर कृपा कीजिए। इस संसार रूपी भवसागर से पार उतारो। अपनी दया-दृष्टि से मुझे प्रभु के दर्शन करवा दो। मेरी डूबती नैया को आप ही पार लगा सकते हो। मैंने सभी दिशाओं में घूमकर देख लिया है, मुझे आप से ऊँचा कोई संत नहीं मिला। मुझे समाज की भी परवाह नहीं है। मैंने आपको अपने हृदय में बसा लिया है। अब दुनिया के ताने और घर की मर्यादाएं मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं। मुझे केवल आपके आशीर्वाद की ज़रूरत है। हे कृपा के सागर, मुझ पर कृपा कीजिए, इस संसार रूपी भवसागर में मैं डूबती जा रही हूँ। मुझे नाम के जहाज़ पर बिठाकर इस सागर से पार करवा दो। नाम की दात मेरी झोली में डाल दो। सद्गुरु जी दीन दयालु, करूणा के सागर ने जब देखा कि रूपा तन-मन से यहाँ आ चुकी है, अब इसे कोई नहीं रोक सकता, तब सद्गुरु जी ने रूपा को नाम की दात प्रदान की और गुरु गोरख नाथ का भ्रम मिटाने के लिए अपने कुण्ड से अमृत लेकर रूपा को पिला दिया। गुरु गोरख नाथ ने सोचा कि रूपा तो यहाँ पवित्र होने आई थी परंतु उसे रविदास ने उसे अपने कुण्ड में से चमड़े वाला पानी पिलाकर अपवित्र कर दिया है। गोरख नाथ के मन में घृणा उत्पन्न हो गई। सद्गुरु रविदास महाराज जी ने सूक्ष्म रूप गोरखनाथ को आवाज़ दी-'नाथ जी ! छिपकर क्यों देख रहे हो? यदि दूर से चल कर आ ही गये हो तो आप भी अमृत का पान कर लीजिए। सद्गुरु के मुख से यह शब्द सुनकर नाथ जी हैरान रह गए। सोचने लगे कि मैं सूक्ष्म रूप में यहाँ आया था ताकि मुझे कोई देख न ले पर इसने मुझे कैसे देख लिया? गोरखनाथ नहीं जानता था कि जिसकी नज़रों में पूरा ब्रह्मांड है, उसकी नज़रों से कोई कैसे छिप सकता है? शर्म के मारे गोरखनाथ आगे बढ़ा और अमृत लेने के लिए उसने अपनी हथेली आगे बढ़ा दी, लेकिन अमृत को गंदा पानी समझ कर उसने पिया नहीं बल्कि बड़ी चालाकी से हथेली के बीच से नीचे गिराता गया।

अमृत पान करके रूपा तो अपना मनोरथ पूरा करके मुल्तान चली गई पर गोरख नाथ को कुछ भी न मिला और वह खाली हाथ वापस आ गया। समय बीतता गया। रूपा ने अपने गृह में एक विशाल भण्डारा करवाने की बात सोची। भण्डारे का कार्यक्रम निश्चित कर लिया गया। सभी को निमंत्रण भेज दिए गए। एक सेवादार सद्गुरु रविदास महाराज और गुरु गोरख नाथ के पास भी भेज दिया गया। जब सेवादार गुरु गोरखनाथ के पास निमंत्रण लेकर पहुँचा और नाथ को रूपा के गृह में चरण डालने की प्रार्थना की तो गोरख नाथ बोला-क्या वह रूपा मेरे सवा लाख शिष्यों को भोजन करवा पाएगी? सेवादार ने नाथ के इस प्रश्न को रूपा के समक्ष रखा। रूपा ने उसी सेवादार को पुनः भेजा और कहा

कि नाथ जी को प्रार्थना कर देना कि वह अपने साथ जितने मर्जी शिष्यों को ले आएं, पर दर्शन जरूर दें। सेवादार ने रूपा का यह संदेश पुनः नाथ जी को दे दिया। अब निश्चित तारीख पर भण्डारा होने लगा। सभी श्रद्धालु रूपा के गृह में आने लगे। सभी अपनी इच्छा के अनुसार लंगर के लिए आटा, चावल आदि का योगदान डाल रहे थे। रूपा की एक बहन जो बहुत गरीब थी, उसकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी, पर मन में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास था, सोचने लगी कि वहाँ भण्डारे में मैं क्या लेकर जाऊँ? खाली हाथ जाना भी तो ठीक नहीं। काफी विचार के बाद उसने घर में रखी गाय का दूध एक छोटे से बर्तन में डाला और रूपा के घर पहुँच गई। मन में सोचती गई कि इतने बड़े भण्डारे में मैं केवल यह दूध ही लेकर जा रही हूँ। मेरी बहन क्या सोचेगी? इसी विचार में डूबी बहन करमां भण्डारे में पहुँच गई। उसने दूध वाला बर्तन रूपा को पकड़ाया। रूपा ने उस बर्तन को लिया और रसोई में अलग स्थान पर रख दिया। रूपा जानती थी कि 'करमां मेरी गुरमुख बहन है। आर्थिक रूप से चाहे वह कमजोर है लेकिन श्रद्धा और स्नेह से परिपूर्ण है। कोई भी काम बड़ा हो या छोटा लेकिन उसमें निहित भावना का ही विशेष योगदान रहता है। श्रद्धा से यदि किसी को दो शब्द ही कह दिए जाएं तो वे शब्द दिखावे की कीमती वस्तु से भी कहीं अधिक मूल्यवान होते हैं। हमारी अटूट श्रद्धा और सेवा भावना से ही प्रभु के दर्शन होते हैं। श्रद्धा तो कठोर से कठोर हृदय को भी पिघला देती है। इधर भण्डारे पर श्रद्धालु इक्ट्ठे होने शुरू हो गए। गुरु गोरख नाथ भी अपने सवा लाख शिष्यों के साथ मुल्तान पहुँच गया। पहुँचते ही नाथ जी रूपा को कहने लगे कि रूपा, मेरे सभी शिष्य यहाँ पहुँच गए हैं। क्या आप का भोजन तैयार है? रूपा विनम्रता सहित बोली-नाथ जी, यह सभी कुछ आप का ही तो है, आप के लिए ही है, लेकिन यदि आपकी अनुमति हो तो पहले अपने सवा लाख शिष्यों के साथ आप संगत को दर्शन दे दीजिए और फिर भोजन कीजिए। आप ने यहां पधार कर मुझ पर अपार कृपा की है। भोजन भी बिल्कुल तैयार है। नाथ जी कहने लगे-पहले मुझे कुछ दूध दीजिए ताकि मेरे शिष्य उसकी लस्सी बनाकर पी सकें। रूपा ने कहा - नाथ जी! आप किसी बर्तन में दूध डलवा लीजिए। नाथ ने अपनी चिप्पी आगे बढ़ाई और कहा कि इसे दूध से भर दो, मुझे ज़्यादा दूध नहीं चाहिए। नाथ की उस चिप्पी में ऐसा जादू था कि वह कभी भी भरती नहीं थी चाहे दूध की नदी भी उसमें क्यों न डाल दी जाए। रूपा ने अपने सद्गुरु महाराज जी का ध्यान किया और उस दूध के छोटे से बर्तन को, जो करमां लाई थी, उसे उस चिप्पी में उलटना शुरू कर दिया। नाथ जी यह सभी कुछ देखकर मुस्कुरा रहे थे। वह जानते थे कि रूपा का यह बर्तन इस चिप्पी को नहीं भर सकता है। चाहे जितना भी दूध डाल लें, यह चिप्पी भरने वाली नहीं है। लेकिन प्रभु-भक्त रूपा ने भी अपने गुरु को सच्चे मन याद कर चिप्पी में दूध डालना शुरु किया। दूध की धारा ने विशाल रूप धारण कर लिया। नाथ की वह चिप्पी दूध से भर गई और रूपा बोली "नाथ जी, यह चिप्पी तो दूध से भर गई है, कोई दूसरा बर्तन दीजिए।" नाथ हैरान रह गया। दूध चिप्पी से बाहर निकल रहा था। जिस चिप्पी को बड़े-बड़े लोग नहीं भर सके। बड़े-बड़े सागर भी उसका मुकाबला नहीं कर सके, उसे एक छोटे से बर्तन ने कैसे भर दिया है? इसने तो कमाल ही कर दिया है। पूछने लगे रूपा, न जाने तेरे पास कौन सी सिद्धियां हैं जिसने मेरी सभी प्रकार की सिद्धियों को मात दे दी है। रूपा बोली-'नाथ जी ! मेरे पास कोई सिद्धि नहीं है और न ही मुझ में कोई ताकत है। यह सारी कृपा तो मेरे मालिक सद्गुरु की है, मेरे सद्गुरु रविदास महाराज जी के दिए हुए अमृत की कृपा है। नाथ जी मन ही मन पछताने लगे कि यदि उस चमड़े

वाले पानी में इतनी ताकत थी तो मैंने उसे ग्रहण क्यों नहीं किया। उस अमृत को पीकर यदि सामान्य स्त्री रूपा में इतनी शक्ति आ सकती है, तो मेरे पास तो पहले ही इतनी शक्तियां थी, अमृत पाने से मैं कई गुणा अधिक शक्तिशाली बन जाता। पर अब समय बीत जाने पर क्या हो सकता था? बीता समय तो कभी वापस नहीं आता। अब केवल पश्चाताप् के अलावा कुछ नहीं हो सकता था।

फिर नाथ ने सोचा कि रविदास के कुण्ड में तो बहुत पानी रहता है। किसी दिन जाकर अवश्य उस अमृत को पीकर आऊँगा। इसी उद्देश्य से गोरख नाथ एक दिन बनारस पहुँचे और सद्गुरु रविदास महाराज से प्रार्थना करने लगे कि उसे भी वह अमृत पिला दें। सद्गुरु जी कहने लगे-नाथ जी, जब आपको अमृत दिया था तब तो चालाकी से नीचे गिरा कर, उसे पिया नहीं और अब आप अमृत माँग रहे हो। किसी भी कार्य का समय निश्चित रहता है। जो समय को गंवा देता है, वक्त को पहचानने में देरी कर देता है, वक्त की कद्र नहीं करता, उसे पछताना ही पड़ता है। अब आपको समर्थ अमृत की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

गुरु गोरख नाथ सद्गुरु रविदास जी को कहने लगे कि मैंने सभी रिद्धियों-सिद्धियों को पा लिया हुआ है। लेकिन ऐसी कौन सी दात तुमने अपनी सेविका रूपा को दी है जिसने थोड़े से दूध से मेरी उस चमत्कारी चिप्पी को भरने का कमाल कर दिखाया है? उसने मेरी सारी सोच बेकार कर दी है। तब सद्गुरु बोले- 'नाथ जी ! मेरे पास कोई रिद्धि-सिद्धि नहीं है और न हीं मैं अपने शिष्यों को कोई तंत्र-मंत्र सिखाता हूँ। मैं तो केवल उस मालिक की सहज भक्ति करता हूँ, उसी के नाम का सिमरन करता हूँ जो सब से महान है, ऊँच है। यह रिद्धियाँ-सिद्धियाँ भी इस 'नाम' के वश में हैं।

सुखसागरु सुरतर चिंता मनि कामधेनु बसि जाके ।
चारि पदारथ असट दसा सिधि नवनिधि करतल ताके ।।

(पृष्ठ संख्या 658)

हे नाथ! उस मालिक के नाम में तो केवल नौ सिद्धियां ही नहीं बल्कि उस नाम में सुखों का सागर, स्वर्ग के पांचों वृक्ष, मनवांछित फल देने वाली चिन्तामणि, सभी कामनाओं को पूरा करने वाली कामधेनु गाय है। अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष आदि चार पदार्थ और सभी अन्य सिद्धियां भी इसी के वश में है। यही कारण है कि सद्गुरु अमरदास ने प्रभु से केवल नाम की दात ही माँगी क्योंकि नाम के बिना हम जो भी मांगते है, वह दुख का कारण बनता है

विणु तुधु होरु जि मंगणा सिरि दुखा के दुख
देहि नामु संतोखीआ उतरै मन की भुख ।।

सभी रिद्धियों और अन्य कर्म-कांडों को नाम के समक्ष तुच्छ बताते हुए कहा गया है:-

समहू को रसु हरि हो ।।1।। रहाउ।
काहू जोग, कोहू भोग, काहू गिआन, काहू धिआन ।।
काहू हो डंड धरि हो ।।1।।
काहू जाप काहू ताप काहू पूजा होम नेम।।
काहू हो गउनु करि हो।।2।।
काहू तीर काहू नीर काहू बेद बीचार।
नानक भगति प्रिअ हो ।। 3 ।।

(गउड़ी म. 5 पंना 213)

अतः नाथ जी! हमें प्रभु नाम का ही सिमरन करना चाहिए जो सर्वशक्तिमान है और उसी से ही मानव कल्याण संभव है। तुम्हें भी इन तंत्र-मंत्रों को छोड़ कर सच्चे नाम का सिमरन करना चाहिए, उसके साथ अपनी लिव लगाने से मानव में नम्रता का वास होता है और अद्म का नाश हो जाता है। उस प्रभु के नाम में ऐसी शक्ति है जिसके समक्ष अन्य झूठी बातें टिक नहीं पातीं। सद्गुरु रविदास महाराज जी से ज्ञान की बातें सुनकर गुरु गोरख नाथ गुरु-चरणों में गिर पड़े और कहने लगे- 'आप ने तो मेरी बुद्धि पर पड़े अहम के पर्दे को हटा दिया है और मुझे इन रिद्धियों- सिद्धियों के जाल से बाहर निकाल दिया है। आप धन्य हो, महान हो।

रानी झालां बाई को दीक्षा

साधू की जउ लेहि ओट। तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि ।।

चितौड़गढ़ के राजा राणा सांगा की पत्नी रानी झालांबाई एक पतिव्रता स्त्री थी। सदैव राजा के आदेश का पालन करने वाली रानी झालां कोई भी ऐसा कार्य नहीं करती थी, जिससे उसके पति की भावनाओं को ठेस पहुँचे। पति के मुख से निकला प्रत्येक वाक्य रानी के लिए सत्य वचन होता था। एक महारानी का ऐसा कर्तव्य-निष्ठा वाला जीवन व्यतीत करना महान नारी का प्रतीक है। जहाँ घर-गृहस्थी में रानी कुशल थी, वहीं प्रभु की बंदगी करनी, नियमबद्ध पाठ-पूजा करनी, साधु-संतो की सेवा करना आदि रानी झालां के जीवन के सिद्धांत थे। शाही महलों में रहकर भी रानी उसी तरह विरक्त थी जिस प्रकार पानी में कमल का फूल। समय बीतता गया और रानी गृहस्थ आश्रम के कर्तव्यों से मुक्त हो गई। अतः रानी ने अपना अधिक समय मालिक के चरणों में लगाना आरंभ कर दिया।

रानी झालां बाई अपना बहुत सारा समय प्रभु-सिमरन व धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन-मनन करने में लगाती। परंतु गुरु के बिना उसके अंदर की ज्योति कैसे प्रज्वलित हो सकती थी ? रानी के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। रानी समझ चुकी थी कि उस परम पिता परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए एक परम-पुरुष संत-गुरु की आवश्यकता होती है

अंबर कुंजां कुर लियां, गरजि भरे सबे ताल।
जिनि मैं गोबिंद बीछुरे, तिनके कौण हवाल ।।

रानी के मन में पूर्ण संत को पाने की लालसा जाग उठी। लेकिन पतिव्रता रानी अपने पति की आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं करना चाहती थी। एक दिन जब राजा राज-काज से मुक्त हो कर अपने महल में पहुँचा तो रानी प्रतिदिन की तरह राजा की सेवा करने में लग गई और फिर योग्य अवसर पाकर उसने अपनी इच्छा राजा के सामने व्यक्त की। कहा- 'मेरे स्वामी! यदि आप की अनुमति हो तो क्या मैं कुछ दिनों के लिए तीर्थ-यात्रा के लिए जा सकती हूँ? हो सकता है वहाँ पर किसी सच्चे संत के दर्शन हो जाएँ और मुझे नाम की अमूल्य दात मिल जाए। सर्व प्रकार से समर्थ गुरु के मिल जाने पर समस्त सांसारिक और मानसिक दुख नष्ट हो जाएंगे।

रानी की मनोकामना एवं उच्च सोच को राजा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और रानी को यात्रा पर भेजने के सभी प्रबन्ध भी कर दिए। राजा स्वयं भी रानी के साथ जाना चाहता था पर राज काज का व्यस्त जीवन उसे जाने नहीं दे रहा था। रानी के लिए दो रथ सजा दिए गए और कुछ दासियों

को भी रानी के साथ भेज दिया गया। रास्ते में पूजा-पाठ करने हेतु पंडित भी भेजे गए। रानी के लिए सभी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखते हुए राजा ने रानी झालां बाई को तीर्थ यात्रा पर रवाना किया।

रानी आज बहुत प्रसन्न थी, वह अपनी मंजिल की ओर चल पड़ी। सच्चे सद्‌गुरु को पाने की तीव्र उमंग लिए रानी रास्ते में जहाँ भी जाती, वहाँ स्नान कर पूजा-पाठ करती और भगवान से यही प्रार्थना करती कि हे प्रभु, मुझे पूर्ण सन्त के दर्शन करवा दो। मेरा मन गुरु-दर्शनों के लिए व्याकुल हो रहा है। कल्पना के रथ पर सवार रानी आखिर काशी नगरी में पहुँच गई। साधु सन्तों की प्रसिद्ध इस नगरी में गंगा की पवित्र धारा भी बहती है। रानी ने काशी में स्थित अनेक पवित्र स्थानों के दर्शन किए। रानी सद्‌गुरु रविदास की महिमा पहले से ही सुन चुकी थी। उन्हीं की याद और वैराग्य में रानी तीर्थ यात्रा के लिए निकली थी। सद्‌गुरु के मिलने की तड़प ने रानी को काशी में पहुँचा दिया। काशी पहुँच कर रानी विचार करने लगी कि जिस महान रहिबर ने पत्थरों को पानी में तैरा दिया, उलटी गंगा बहा दी, बड़े-बड़े पण्डितों के अहम को चकनाचूर कर दिया राजा नागर मल्ल की भरी सभ में चार युगों के जनेऊ दिखा दिए, बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को सद्‌गुरु के ज्ञान के समक्ष शीश झुकाना पड़ा, क्यों न उस इलाही नूर के दर्शन कर लूँ। दर्शन करके मेरा मानव जीवन धन्य हो जाएगा। जन्मों-जन्मों के पात्र कट जाएँगे। लेकिन रानी ने सोचा कि यदि मैंने अपनी यह इच्छा इन पण्डितों के समक्ष रखी तो न जाने ये अज्ञानी मुझे सद्‌गुरु रविदास जी के दर्शनों के लिए जाने भी देगें कि नहीं। कोई बहाना बनाकर मुझे वहाँ जाने से रोक न दे? बेहतर यही है कि मैं अपने साथ अपनी दो सखियों श्रद्धा और लगन को लेकर गुरु की तालाश में निकल जाऊँ। दृढ़ निश्चय कर रानी झालां बाई अपनी सखियों के साथ सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के चरणों में पहुँच गई। महाराज जी उस समय सत्संग कर रहे थे। महाराज जी की इलाही वाणी से समूह संगत मंत्र मुग्ध बैठी थी। अमृत वर्षा की बूंदे रानी पर भी पड़ने लगी। मीठी वाणी ने रानी को भी आन्नदित कर दिया। सोचने लगी- मैंने व्यर्थ में ही कई दिन जगह-जगह घूम कर समय गंवा दिया, जिस सद्‌गुरु की मुझे तलाश थी, वे मुझे आज मिल गए हैं। प्रभु ने मेरी विनती स्वीकार कर ली है। मुझ पर कृपा कर मेरी मुराद मेरी झोली में डाल दी है।

कबीर बादल प्रेम का, हम पर बरख्या आइ। अंतरि भीगी आत्मां, हरी भई बनराई ।।

मेरी तीर्थ यात्रा का मनोरथ पूर्ण हो गया है। सत्संग सुन कर मेरे भीतर के सभी बजर कपाट खुल गए हैं :-

परम परस गुरु भेटीऐ पूरब लिखत लिलाट । उनमन मन मन ही मिले छुटकत बजर कपाट ।।

(पृष्ठ संख्या 346)

सद्‌गुरु के दर्शन हो गए पर मन अभी भी बेकाबू था। रानी अभी भी राजमहलों वाली रानी के रंग में रमी थी। उसके तन पर कीमती कपड़े थे, हीरे जड़ित आभूषण थे, सखियाँ उसके साथ थीं, जिस

कारण चितौड़गढ़ की रानी ख्यालों में डूब गई। सोच रही थी कि निःसन्देह सद्‌गुरु रविदास ब्रह्मज्ञानी हैं, सर्वज्ञाता हैं, पर हैं तो निर्धन ही। कहाँ मैं शाही भवन में रहने वाली महारानी और कहाँ फकीर रविदास। कभी रानी खुद को देखती है और कभी रविदास जी के सादे पहरावे को। रानी ने सोचा शायद मुझे देखकर रविदास जी बहुत प्रसन्न होंगे। उनका नाम और दर्जा मेरे आने से ऊँचा हो जाएगा। रानी की कल्पना को अहम के पंख लग चुके थे। सोच में डूबी रानी तन-मन का गर्व करने लगी। मन में दुविधा थी। रानी का एक पैर आगे है और दूसरा पीछे। समझ में नहीं आ रहा कि सद्‌गुरु का ज्ञान देखूँ कि उनकी सादगी। रानी बनी रहूँ कि गुरु चरणों की दासी ।

सद्‌गुरु रविदास अन्तर्यामी, घट-घट के स्वामी, सब के दिलों को जानने वाले थे। रानी की दुविधा का निवारण करते हुए अपनी वाणी में उच्चारण करने लगे :-

तुझहि सुझंता कछू नाहि पहिरावा देखे ऊभि जाहि।
गरबवती का नाही ठाउ।
तेरी गरदनि ऊपरि लवै काउ ।।१।।
तू कांइ गरबहि बावली ।
जैसे भादर खूब राजु, तू तिसते खरी उतावली । । १ । । रहाउ ।।
जैसे कुरंक नही पाइओ भेदु ।
तनि सुगंध दूदै प्रदेसु ।
अपतन का जो करै बीचारु ।।
तिसु नही जम कंकरु करे खुआरु ।।२।।
पुत्र कलत्र का करहि अहंकारु।
ठाकुरु लेखा मगनहारु ।
फेड़े का दुखु सहै जीउ।
पाछे किसहि पुकारहि पीउ पीउ ।।३।।
साधू की जउ लेहि ओट ।।
तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि ।
कहि रविदास जो जपै नामु।
तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु ।।४।।१।।

(आदि ग्रन्थ पन्ना 1196)

सद्‌गुरु जी अपनी वाणी में रानी को समझा रहे हैं कि हे काया रानी! तुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा। तुम तो अपनी भेश-भूषा, रंग रूप देखकर गर्व महसूस कर रही हो, तेरा अहम बाहर उछल रहा है, पर तुझे पता नहीं तेरा यह गर्व करना व्यर्थ है। जिस सुन्दर काया को देख तुम गर्व कर रही हो, यह तेरी बनाई हुई नहीं है, यह तो उस मालिक की बख्शिश है। हे काया ! यदि तुम भ्रम और अज्ञानतावश उस मालिक की रहमत को अपना नाम दे रही हो तो समझो तुझ में मैं का निवास हो गया है। यहाँ मालिक की जगह थी. वहाँ तुम्हारे अहम् ने घर कर लिया है। पर याद रख, तेरा भी वही

हाल होगा जो भादों महीने में उगने वाली खुंभ (मशरूम) का होता है। खुभ जब उगती है तो उसका रंग चाँदी जैसा सफेद, फूल सा कोमल, चाँद सा सुंदर होता है लेकिन शाम होते ही उसकी सुंदरता का नाश हो जाता है, उसका रंग काला पड़ जाता है और वह इस नश्वर संसार में विलीन हो जाती है। हे काया रानी! उस कुकरमुत्ते के जीवन का समय तो फिर भी निश्चित है, कम से कम एक दिन तो उसे जीने के लिए मिल ही जाता है पर तेरे जीवन का तो कोई भरोसा ही नहीं। तेरा तो कुकरमुत्ते से पहले ही नाश होने वाला है। न जाने जो श्वास तुमने ऊपर खींचा है, वह नीचे आए भी कि नहीं। तेरा जीवन तो पानी के बुलबुले के सामान है।

हे काया! प्रत्येक श्वास उस मालिक का दिया हुआ है और उसी को अर्पण करने में तेरा भला है। केवल और केवल उस प्रभु का नाम ही अजर, अमर है, बाकी सारा संसार कुसुंभी रंग की तरह नाश होने वाला है।

रानी झालां बाई को सदगुरु के प्रवचनों में से अपने सभी सवालों का जबाब बिन पूछे ही मिल गया और रानी सदगुरु रविदास जी के चरणों में शीश झुकाकर अपने गुनाहों की माफी माँगने लगी और कहने लगी - हे कृपानिधि, मुझ पर कृपा कीजिए, हम गुनाहगार हैं। आप दया के सागर हो। मुझे अपने चरणों में स्थान दो। नाम की दात देकर मुझ पापिन का उद्धार कीजिए।

किस मुख से बिनती करूं लाज आवत है मोहि ।
तुम देखत अवगुण करूं कैसे भावउ तोहिं ।।
औगुण हारे पिता जी, बख्श गरीब निवाज ।
जे मैं पूत कूपत हूँ तो राख पिता को लाज।

सदगुरु रविदास महाराज जी की कृपा से रानी झालां बाई को नाम की दीक्षा प्राप्त हो गई और शांत मन से वह वापस वहाँ लौट गई जहाँ उसके बाकी सहायक और पण्डित ठहरे हुए थे। जब पण्डितों को ज्ञात हुआ कि रानी ने सदगुरु रविदास महाराज जी के चरणों में अपना तन-मन समर्पित कर दिया है तो वे आग बबूला हो गए। ईर्ष्या की अग्नि में जलते पण्डित रानी से सवाल करने लगे- 'रानी ! तुमने यह अच्छा नहीं किया। कहाँ गई तेरी तीर्थ यात्रा और कहाँ गया तेरा पूजा पाठ ? यदि तुमने नीच जाति के रविदास को ही अपना गुरु बनाना था तो हमारे साथ यह नाटक खेलने की क्या जरूरत थी? हम पण्डितों को अपने साथ लाकर तुमने हमारा अपमान किया है। रानी ने विनम्रता सहित उत्तर दिया कि जिस उद्देश्य और मनोकामना को लेकर मैंने तीर्थ यात्रा आरम्भ की थी, जिस अमूल्यी दात को पाने के लिए मैंने जगह-जगह प्रार्थना की थी, वह परम सदगुरु के दर्शन और उनसे प्रभु नाम का अमोलक खज़ाना मुझे मिल गया है। राम-नाम का रत्न पाकर मुझे जन्मों-जन्मों की पूंजी प्राप्त हो गई। अतः अब मैं वापस चितौड़गढ़ जाना चाहती हूँ।

रानी यात्रा सम्पूर्ण कर राज महल में पहुँच गई। रानी के आगमन पर उसका हार्दिक स्वागत किया गया। मंगल गीत गाए गए। पर क्रोधित पण्डितों ने मौका पाकर रानी से पहले ही राजा के कान

भर दिए। कहने लगेः 'राजा! आज आपकी शानो-शौकत को तो तुम्हारी पतिव्रता रानी ने मिट्टी में मिलाया ही है, साथ में हमारी विद्वता को भी कलंकित कर दिया है। साथ गए महान पण्डितों को छोड़कर इसने नीच चमार जाति के रविदास को अपना गुरु बना लिया है। राजा ! अब आपके पास दो ही रास्ते हैं-या तो रानी को घर से निकाल दो या फिर हम आपके महलों को छोड़कर चले जाएँगे। लेकिन राजा तो अपनी रानी को भली-भांति जानता था। उसे पता था कि रानी झालां ने कुछ सोच-समझ कर ही सदगुरु रविदास को अपना गुरु बनाया होगा। उसने सोचा कि क्यों न पहले मैं रानी के मुख से सारी बात सुन लूँ और असलियत जानने के बाद ही कोई निर्णय लूँ।

जब राजा शाम को महल में वापस आया तो रानी झालां बाई ने पति को शीश झुकाया और पति के चरणों में बैठकर सारी तीर्थ यात्रा का वृत्तान्त सुना दिया। जब रानी ने राजा को बताया कि उसने सद्गुरु रविदास जी को गुरु बना लिया है तो राजा कहने लगा- 'रानी ! यदि तुमने गुरु बनाना ही था तो किसी उच्च जाति से संबंध रखने वाले संत को गुरु बनाती क्योकि पण्डित लोगों को तुम्हारी यह बात अच्छी नहीं लगी। वे हम सभी से बहुत नाराज हैं।' रानी झालां ने उत्तर दिया- 'स्वामी जी! माफ करना, मेरे सद्गुरु नीच नहीं, बल्कि ऊँचों से भी ऊँच हैं। उनकी अमृतवाणी में इतनी शक्ति है कि पत्थर दिल भी मोम बन जाते हैं। यही कारण है कि राजा हरदेव नागर मल्ल और बड़े-बडे विद्वान भी उनके शिष्य बन गए हैं। पतिदेव ! उनकी लीला आपार है, अकथ है। उसे तो वही जान सकता है जिसने उनको चाहा है।'

राजा को रानी की बातों पर आश्चर्य हो रहा था लेकिन कानों से सुनने और आँखों से देखने में बहुत फर्क होता है। राजा ने रानी को कह दिया कि रानी! यदि तेरे सद्गुरु पाँच दिनों के भीतर हमारे गृह में आकर हमें दर्शन दे दें तो ही मैं समझेंगा कि तुमने सच्चे गुरु को पा लिया है।

यह रानी झालां की परीक्षा की घड़ी थी। रानी को अपने गुरु-प्रेम पर पूर्ण भरोसा था पर सोचने लगी कि इतनी दूर बैठे सद्गुरु को पाँच दिनों में तो संदेश भी नहीं पहुँचाया जा सकता तो वे पहुँचेंगे कैसे? क्योंकि उन दिनों यातायात के साधन भी नहीं थे। लोग पैदल यात्रा किया करते थे। आखिर रानी झालां ने सोचा कि इतने कम समय में तो प्रभु चरणों में केवल प्रार्थना ही की जा सकती है। सच्चे मन से रानी ने गुरु-मिलन की अरदास की और कहा कि हे मेरे मालिक ! अब मेरी लाज आपके हाथ है। आप ही देखें कि इतने कम समय में आप राजा को कैसे दर्शन दे सकते हो? रानी की अरदास गुरु-घर में पहुँच गई। रानी की पुकार सुनकर सद्गुरु रविदास जी ने चितौड़गढ़ आने का मन बना लिया। कहते हैं कि सच्ची अरदास कभी व्यर्थ नहीं जाती। प्रभु अपने भक्तों की रक्षा करने हमेशा आते हैं। सच्चे मन से जो भी प्रभु को याद करता है, वे उसे मिल ही जाते है :-

जह जह काज किरति सेवक की तहा तहा
उठि धावै, सेवक कऊ निकटी होइ दिखावै ।
जो जो करै ठाकुर पहि सेवक ततकाल होइ आवै।। रहाउ ।।

(पृष्ठ संख्या 403)

इतिहास साक्षी है कि जब-जब भी किसी सेवक या भक्त ने सच्चे हृदय से अपने गुरु को याद किया, तब-तब सद्‌गुरु ने अपने भक्तों की प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार किया और उनकी डूबती हुई नैया को पार लगाया है। भरी सभा में द्रोपदी की पुकार सुनकर कृष्ण दौड़े आए और उनकी लाज रख ली। भक्त प्रहलाद की कड़ी परीक्षाओं में भगवान स्वयं उसे बचाने आए थे। मीरा के ज़हर के प्याले को अमृत बनाने वाले भी स्वयं सद्‌गुरु ही थे। अंजील में भी लिखा है -

Ask and it shall be given you. (जो कुछ तुम मांगोगे, वह तुम्हें मिलेगा)

जो मागहि ठाकुर अपुने ते सोई सोई देवै ।।

(पंना 68)

जब रानी झालां द्‌वारा की गई सच्चे हृदय की प्रार्थना सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के पास पहुँच गई तो सद्‌गुरु अपने कुछ सेवकों के साथ आगामी सुबह चितौड़गढ़ के लिए रवाना हो गए और प्रभु कृपा से अगले ही दिन चितौड़गढ़ पहुँच गए। जब रानी झालां ने सद्‌गुरु महाराज के पहुँचने की खबर सुनी तो उनकी खुशी का ठिकाना ही न रहा।

भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ ।। प्रभु अबिनासी घर महि पाइआ।

(शब्द हजारे)

रानी गुरु चरणों में बैठी खुशी के आँसू बहा रही थी और प्रभु का लाख-लाख शुक्र मनाती हुई कहने लगी 'महाराज ! आपने अपनी सेविका की लाज रखी है। मैं आपको पाकर धन्य हो गई हूँ। झालां बाई ने राणा सांगा के हाथ राजा को यह संदेश भेज दिया कि सद्‌गुरु हमारे गृह में प्रवेश कर चुके हैं। शीघ्र आइए और महाराज जी के दर्शन कीजिए।' राजा यह संदेश पाकर आश्चर्यचकित रह गया। उसे सद्‌गुरु जी के पहुँच जाने पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। सोचने लगा कि मैंने तो पाँच दिन में भी उनका आना असंभव समझा था लेकिन यह तो आज ही पहुँच गए। यह ज़रूर कोई इलाही रूप है। रानी ने ठीक ही किया है जो ऐसे महान सन्त को अपना गुरु बनाया है। रानी द्‌वारा पहले से सुनाई सद्‌गुरु जी की महिमा अब राजा को सत्य लगने लगी। ऐसी पत्नी और सद्‌गुरु को पाकर राजा मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। सोच रहा था कि मेरे जैसा पापी भी ऐसे महान पूर्ण सन्त के दर्शन कर पवित्र हो जाएगा। यदि रानी की श्रद्‌धा एवं प्रेम वाली तार सद्‌गुरु के पास पहुँच सकती है तो वे दया के सागर मुझ पर भी अवश्य कृपा करेंगे :

दरसनु देखि जीवा गुर तेरा ।।
पूरन करमु होइ प्रभ मेरा ।।।

(पृष्ठ संख्या 742)

राजा ने सद्गुरु रविदास महाराज जी को शाही महल में अपने चरण-कमल डालने की प्रार्थना की। महाराज जी ने विनती स्वीकार कर ली। राजा ने अपने अन्य विद्वान पण्डितों और मंत्रियों को भी वहाँ बुला लिया। जब गुरु जी शाही महल में पहुँचे तो राजा ने सद्गुरु महाराज जी का फूलों के साथ अभिनन्दन किया। शहनाई बजने लगी, गुरु-महिमा के गीत गूंजने लगे। गुरु महाराज जी के चेहरे का तेज चमक रहा था। जो भी आपके दर्शन करता, अमृतमय हो जाता। गुरु दर्शन पाकर राजा को लग रहा था कि मानो आज उसे वह खज़ाना मिल गया है जिसकी शाही महल में कमी थी। जो संतोष और आनन्द राजा को आज मिल रहा था, उसका अहसास राजा ने पहले कभी नहीं किया था लेकिन यह सब कुछ देखकर महल में उपस्थित कुछ ईर्ष्यालू पण्डितों से रहा न गया। वे अपनी नीच सोच का प्रदर्शन यहाँ भी करने लगे। कहने लगे- 'राजा! तुम भी रानी झालां के पीछे लगकर पागल हो गए हो। एक नीच को इतना मान सम्मान दे रहो हो। इतने समझदार होकर तुमने एक औरत की बात मान ली। जब अज्ञानी पण्डित महाराज जी के बारे में अपशब्दों का प्रयोग कर रहे थे तो राजा राणा सांगा ने हाथ जोड़कर सद्गुरु को प्रार्थना की 'महाराज! इन नीच सोच वाले पण्डितों पर भी कृपा करो, इनकी अज्ञानता और मूर्खता का पर्दा फाश करो जिससे इनकी भी अक्ल ठिकाने आ जाए। इनकी बुद्धि पर पड़ा अहम् का पर्दा यदि हट जाए तो शायद ये पण्डित भी मेरी तरह आप के दिव्य स्वरूप को जान जाएंगे।

सद्गुरु रविदास महाराज जी ने राजा को एक सुन्दर सिंहासन तैयार करवाने के लिए कहा। गुरु जी के आदेशानुसार राजा ने हीरे-रत्नों से जड़ित एक भव्य सिहांसन तैयार करवा दिया। सद्गुरु जी ने पण्डितों को कहा कि 'यदि आप का ठाकुर के साथ सच्चा प्यार है तो इस सिंहासन पर बैठकर अपने ठाकुर को बुलाओ ताकि वह आपके कहने पर सिंहासन पर आ जाएँ' । पण्डितों ने बारी-बारी ठाकुर को सिंहासन पर बुलाने की कोशिश की। विनम्रता सहित बुलाया, हाथ जोड़े, मिन्नतें भी की, कई मंत्र पढ़े, पाठ पूजा भी की पर ठाकुर जी सिंहासन पर नहीं आए। जब सभी पण्डितों की हर कोशिश नाकामयाब रही तो पण्डितों की बेबसी को देखते हुए राजा ने सद्गुरु रविदास महाराज जी को करबद्ध प्रार्थना की कि सद्गुरु जी ! अब आप ही दया-दृष्टि डालिए। कृपानिधि ! कृपा कीजिए, अब आप हमें ठाकुर के दर्शन करवा दीजिए।

सद्गुरु महाराज उस सुसज्जित सिंहासन पर विराजमान हुए और उस परम पिता परमेश्वर के चरणों में निवेदन करने लगे :-

मेरी संगति पोच, सोच दिनु राती मेरा
करमु कुटिलता, जनमु कुभांति ।।१।।

राम गुसईआ जीअ के जीवना
मोहि न बिसारहु मै जनु तेरा।

(पृष्ठ संख्या 345)

सद्गुरु जी ने अरदास की और ठाकुर सिंहासन पर आ गए। यहाँ इतिहासकारों ने बताया है कि सद्गुरु जी की प्रार्थना के अनुसार ठाकुर वहाँ प्रकट हो गए और देवताओं ने उन पर फूलों की वर्षा की। यहां सद्गुरु महाराज ने अपनी वाणी में यह बताया है कि यदि जीव सच्चे मन से प्रभु के नाम का सिमरन करता है तो वह जीव उस मालिक का ही रूप हो जाता है। उसे अपने अन्दर से ही परम पिता परमेश्वर के दर्शन हो जाते हैं और देखने वाले को उसमें और मालिक में कोई भेद नज़र नहीं आता।

तू मुझ में मैं तुझ में,
क्योंकर देखूं भेद।
तुझे छोड़ जब मैं लखूँ
तबही उपजै खेद ।।

सद्गुरु रविदास जी भी अपनी वाणी में लिखते हैं:-

तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा ।
कनक कटिक जल तरंग जैसा।

(पृष्ठ संख्या 93)

अतः सद्गुरु जी की अमृत वाणी सुन कर उन अभिमानी लोगों का विवेक जाग गया। मोह-माया और विकारों का अन्धकार मिट गया। ज्ञान के प्रकाश से उन्हें सद्गुरु रविदास महाराज ही अपने ठाकुर दिखाई देने लगे और सभी महाराज जी के चरणों में शीश झुकाने लगे। जय-जयकार होने लगी। इसी महिमा का गुणगान करते हुए श्री गुरु अर्जुन देव जी ने भी अपनी वाणी में फरमाया है:-

ऊच ते ऊच नाम देउ समदरसी
रविदास ठाकुर बणि आई।

गंगा माई को कसीरा भेंट करना

रिदास मोची इह दया कसीरा । आखि सुनाई गंगा तीरा ।।

सादगी और सरलता की गहान मूर्ति, दया के सागर और महान विचारों से परिपूर्ण सद्‌गुरु रविदास महाराज जी देखने में बिल्कुल साधारण मानव लगते थे, लेकिन अपनी अद्‌भुत प्रतिभा कर्मनिष्ठा, ईमानदारी, हाथों की मेहनत और प्रभु भक्ति जैसे अनेक सद्‌गुणों के कारण आप जी का व्यक्तित्व एक अलौकिक करिश्मा बनकर समाज के समक्ष उभरा।

अपने महान नैतिक मूल्यों के कारण ही आप जी के जीवन के साथ ऐसी घटनाएं जुड़ गई जिसमें आप जी ने असम्भव कार्यों को भी सम्भव कर लोगों को चकित कर दिया। विकारों से मुक्त रहकर अपने कर्तव्यों का पालन करना, प्रभु के नाम का सिमरन करना, मन-कर्म-वचन से सत्य बोलना, किसी प्रकार का लोभ न करना, नेक कमाई कर अपने परिवार का पालन-पोषण करना, साधु सन्तों की सेवा करना आदि नैतिक कार्यों को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप देकर सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने बाणी की इन पक्तियों को सार्थक कर दिखाया -

सबै मारगि चलदिआ उसतति करे जहानु ।
अठसति तीर्थ सकल पुन जीअ दइआ परवान ।।

कहा जाता है कि बारह वर्षों के बाद आने वाले कुंभ के मेले में ऋषि-मुनि एवं संत-महात्मा, पंडित-विद्‌वान और घर-गृहस्थी वाले सभी जन गंगा-स्नान के लिए जा रहे थे ताकि अपने तन-मन को पवित्र कर उस परम शक्ति के साथ अभेद हुआ जा सके।

इसी उद्‌देश्य से गाजीपुर का एक निवासी पण्डित गंगा राम भी अपने कुछ साथियों सहित उस कुंभ के मेले को देखने जा रहा था। जब वे सभी काशी के पास से गुजर रहे थे तो उनमें से एक पण्डित बोला- 'यहाँ एक महान सन्त रविदास रहता है, जिसकी आजकल बहुत चर्चा है। तभी दूसरा साथी बोला-'यह सन्त है तो अछूत, चमार जाति का, लेकिन पंडित बना फिरता है। पाठ पूजा भी करता है और वेश-भूषा भी पण्डितों वाली पहनता है, माथे पर तिलक लगाता है और शंख भी बजाता है। किसी से डरता भी नहीं। तीसरा साथी कहने लगा- 'उसे कोई रोकने वाला नहीं मिला होगा, नहीं तो उसकी क्या हिम्मत कि वह ब्राह्मणों वाले सभी कार्य करे। पहले ने उत्तर दिया- "लोगों ने काशी नरेश से उसकी शिकायत की थी लेकिन वहाँ भी रविदास ने अपनी ज्ञान भरी बातें सुनाकर सभी को चकाचौंध कर दिया। उसके तेज के सामने कोई टिक ही नहीं पाया और उसने अपना सीना चीर कर भरी सभा में चारों युगों के जनेऊ दिखा दिए। राजा को भी उसने लाजवाब कर दिया। काशी नरेश ने जब उसके मुख पर प्रभु-नाम की लालिमा देखी तो वह भी लाल हो गया और गुरु-चरणों में शीश झुकाकर उनका सेवक बन गया।"

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मै भी हो गई लाल ।

जिनका तन-मन राम नाम में रंग गया हो, भगवान भी उन्हीं के अंग संग रहता है। इसीलिए गुरु साहिबान ने कहा है :-

जिन के चोले रतड़े प्यारे कंत तिना के पास ।।
घूड़ि तिना की जे मिलै जी कहु नानक की अरदासि ।।

आपे साजे आपे रंगे आपे नदरि करइ ।।
नानक कामनि कतै भावै आपे ही रावेइ ।।

केवल काशी नरेश ही नहीं, मीरा बाई और रानी झालांबाई भी उसकी महिमा गाती नहीं थकतीं। महलों की शानो-शौकत उन्हें अब कहाँ भाती है? दोनों की बातें सुनकर आखिर पंडित गंगा राम बोला 'लोग तो आटे की चिड़ियाँ बनाते हैं। सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। हमें अपनी आँखों से देखे बिना कुछ नहीं कहना चाहिए। चलिए, पास में ही तो उनका (रविदास) आश्रम है और वह चमड़े का काम ही तो करता है। मैं अपना टूटा हुआ जोड़ा भी रविदास से ही गँठवा लूँगा और साथ में बातचीत करने से उसकी महानता का भी पता चल जाएगा। देख लेते हैं कि वह कितना पहुँचा हुआ महात्मा है, जिसकी चर्चा लोग घर-घर करते फिरते हैं? याद रहे कि सद्‌गुरु रविदास जी का पैतृक धन्धा चमड़े का काम करना था। मनुवादी वर्ण-व्यवस्था के अनुसार जिन लोगों को चमड़े का काम सौंपा गया था, उन्हें चमार कहा जाने लगा। अपने कर्त्तव्य का पूर्ण निष्ठा से पालन करने वाली इसी जाति में सद्‌गुरु रविदास जी पैदा हुए थे, लेकिन हमारे कुछ विद्‌वान-बुद्‌धिजीवि इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि सद्‌गुरु रविदास जी जूते बनाते थे। उनका मानना है कि कहीं भी गुरु जी के जूते बनाने के कार्य के प्रति ठोस प्रमाण नहीं मिलते। यह बुद्‌धिजीवि अपने तर्क को स्पष्ट करने के लिए सद्‌गुरु जी की बाणी के इस शब्द का सहारा लेते हैं:-

चमरटा गांठि न जनई लोगु गठावै पनही ।। १ । । रहाउ । ।
आर नही जिह तोपउ ।।
नही रांबी ठाउ रोपउ ।।१।।

(पृष्ठ संख्या 659)

गुरु प्रेमियो! गुरु जी के इस शब्द का संबंध न तो चमड़े से है और न ही जूते गाँठने से है। इस शबद के द्‌वारा सद्‌गुरु रविदास महाराज जी जीव और संसारी पदार्थो की बात करते हैं और कहते हैं कि इस शरीर रूपी जूते को मैं विकारों की गाँठ से जोड़ना नहीं जानता और लोग फिर भी मेरे पास संसारी पदार्थों की माँग करने आते हैं। वे अपनी वाणी में मानव को समझाते हैं कि दुनिया के लोगों को भौतिक पदार्थो के प्रेम की गाँठ ने ही दुखी कर रखा है और प्रभु की कृपा से मुझे इन पदार्थों से

कोई लगाव नहीं है। किसी मोह-माया आदि के जाल में 'मैं' नहीं फँसा हुआ, केवल मालिक का सिमरन कर कमल की तरह गृहस्थी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

यदि हम थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें कि सद्गुरु रविदास जी जूते नहीं बनाते थे तो फिर वे कौन सा काम करते थे? आप के पिता जी किस कार्य से परिवार का गुजारा चलाते थे? अतः निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि गुरु जी का पैतृक काम चमड़े का ही था और सद्गुरु जी भी अपने हाथों से यह कार्य कर, मेहनत की कमाई से अपना जीवन-निर्वाह करते थे। सच्ची किरत ही उनकी पूजा थी जिसके कारण आप जी की ईमानदारी का सिक्का पूरे भारत में जमा हुआ था। आप जी के सादा जीवन और उच्च विचारों से ही सभी प्रभावित हुए थे।

सद्गुरु रविदास महाराज जी के जीवन एवं व्यक्तित्व से संबंधित अन्य पुस्तकें भी इस बात का प्रमाण हैं कि आप जी का पैतृक धन्धा जूते बनाने का था। डा० जसबीर सिंह साबर, चेयरमैन श्री गुरु रविदास चेयर, युनीवर्सिटी अमृतसर अपनी पुस्तक "पावन गाथा श्री गुरु रविदास जी की' पृष्ठ संख्या 122, पर वे लिखते हैं:-

सभनो मिली अरदास सुनाई । सुनती सगति लोग लुगाई ।।
रिदास मोची इह दया कसीरा । आखि सुनाई गंगा तीरा ।।

आप जी द्वारा चमड़े के कार्य को प्रमाणित करते हुए संत हीरा दास अपनी पुस्तक "रविदास दीप' के पन्ना नं. 70 में लिखते हैं:-

जोड़ा गंठ दीजिए, मजूरी कुछ लीजिए,
सो बीस ही बराटक, निकास कर दाई है।
जोड़ा गठ दीया तब पूछत बिप्र हूँ को,
कहो भूम देव अब कहां की चढ़ाई है।
अठ सठ तीर्थों के माहि जो उतंग गंग,
तांके इस्नान को करी सु हमधाई है।
इह दमड़ी हमरी सो लहु, निज हाथ देहु दृढ़ कर,
गांठ भेंट गंग को चढ़ाई है।

श्री बख्शी दास जी ने भी अपनी पुस्तक में लिखा है कि सद्गुरु रविदास जोड़े बनाने का कार्य करते थे। सद्गुरु रविदास महाराज जी ने स्वयं भी अपनी वाणी में इसे स्वीकार किया है

जाति कुटंबांदला ढोर ढोवंता नितहि अजहु बानारसी आस पासा ।।
(पृष्ठ संख्या 1293)

इन सभी प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि श्री गुरु रविदास जी चमड़े का (जूते बनाने का) काम करते थे।

पण्डित गंगा राम अपने साथियों सहित पूछताछ करके सद्गुरु के निवास स्थान पर पहुँच गया। उन्होंने देखा कि चमार जाति में पैदा होने वाले रविदास ने जनेऊ पहना हुआ था. माथे पर तिलक लगाया हुआ था, धोती पहनी हुई थी और गले में माला भी थी। यह सब देख कर वे आश्चर्यचकित रह गए। पण्डित गंगा राम को देखकर सद्गुरु रविदास जी ने पूछा पण्डित जी! मैं आपकी क्या सेवा करूँ? पंडित गंगा राम ने अपना टूटा हुआ जोड़ा गाँठने के लिए कहा और इसकी मजदूरी भी पूछी। महाराज जी कहने लगे कि इसकी मजदूरी एक कसीरा लगेगा। जब उन्होंने सद्गुरु रविदास जी की संतोष और सब की कमाई देखी, ज्ञान भरी बातें सुनीं तो गंगा राम और उसके साथियों को यकीन हो गया कि यह निस्संदेह कोई महान आत्मा है और अवश्य ही इसने चार युगों के जनेऊ दिखाकर, उलटी गंगा बहाकर, लोगों को झुकने के लिए विवश कर दिया होगा क्योंकि आपके मुखारबिन्द से निकला एक-एक शब्द उनके हृदय पर अंकित होता जा रहा था। आपके इलाही नूर और तेजस्वी चेहरे को देख कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। सद्गुरु जी ने गंगा राम का जोड़ा प्यार सहित गांठा और पूछा - 'आप सभी कहाँ जा रहे हो? पण्डित ने कहा कि क्या आप नहीं जानते, बारह वर्ष के बाद आने वाले इस कुंभ के मेले का बहुत महत्त्व है? लोग कुंभ के पवित्र अवसर पर अपने पापों को गंगा के पवित्र जल से धोकर स्वयं को शुद्ध करते हैं। सभी सन्त-महात्मा भी इस मेले में जाते हैं। रविदास ! क्या आप कुंभ के मेले में नहीं जाएंगे? सद्गुरु जी बोले- मुझे खेद है कि मैं मेले में नहीं जा सकता। मुझे कुछ काम है, पर मेरा यह कसीरा जरूर गंगा माई को भेंट कर देना। याद रखना कि यह कसीरा गंगा को तभी देना यदि वह खुद अपना हाथ निकाल कर इसे प्राप्त करे, अन्यथा इसे वापस ले आना। यदि गंगा-माता मेरे प्यार को स्वीकार करेंगी तो वह अवश्य ही इसे अपने हाथों से ग्रहण करेंगी।

सद्गुरु की यह बात सुनकर गंगा राम और उसके साथी मन ही मन मुस्कुराने लगे। सारे रास्ते में वे इसी बात को लेकर हँसी-मजाक करने लगे। कहने लगे कि धनी लोग हीरे जवाहरात, सोना-चाँदी अनेक कीमती चीजें गंगा को दान करते है, तब तो गंगा मां ने कभी अपने हाथ से इसे स्वीकार नहीं किया और रविदास का यह कसीरा वह हाथ निकाल कर क्यों लेगी। क्या इसके बिना गंगा का खजाना खाली पड़ा है? क्या गंगा यह नीच जाति के चमार से कसीरा लेकर अपने ख़ज़ाने भर लेगी? गंगा को यही काम है कि वह नीच जाति के चमार का कसीरा लेने स्वयं आएगी? इस प्रकार तरह-तरह की बातें बनाते हुए वे सब कुंभ के मेले में पहुँच गए। गंगा राम ने गंगा में स्नान किया और उसे याद आया कि रविदास ने गंगा माई को भेंट करने के लिए एक कसीरा दिया था।

वह गंगा किनारे खड़ा हो गया और कहने लगा 'गंगा माता! यह एक कसीरा संत रविदास ने तुझे भेंट करने के लिए दिया था और साथ में यह भी कहा था कि अगर गंगा माई अपना हाथ निकाल कर यह भेंट स्वीकार करेगी तभी देना, नहीं तो वापस ले आना'। अभी गंगा राम की बात खत्म भी नहीं हुई थी कि नदी (गंगा) में से एक सुन्दर हाथ बाहर निकला और साथ ही आवाज़ आई

कि शुक्र है, मालिका! मेरे शहनशाह ने इस तुच्छ जान को भी याद किया है। गंगा ने कसीरे को श्रद्धा के साथ अपने हाथ में लिया और कहने लगी - 'गंगा राम ! खाली हाथ वापस न जाना, मेरी ये भेंट सद्गुरु के चरणों में दे देना और उनको मेरी ओर से विनती करना कि कभी दर्शन भी दे जाएं। गंगा माता ने अपने हाथ से हीरों से जड़ित कंगन उतारा और पण्डित को दे दिया। हीरों से जड़ित बहुमूल्य कंगन पाकर पण्डित हक्का-बक्का रह गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है? एक कसीरे की इतनी अधिक कीमत और इतना ज्यादा सम्मान कि गंगा माता ने स्वयं इसे स्वीकार कर बदले में यह कीमती भेंट रविदास के लिए दी है। हैरानी तो उसे अवश्य हुई पर उसका लालची स्वभाव न बदला। कीमती कंगन को देखकर उसका मन बेईमान हो गया। मन में लोभ भर गया। लोभ एक ऐसा विकार है जिस के बढ़ जाने पर व्यक्ति के बुद्धि-विवेक पर पर्दा पड़ जाता है। उसे लगता है कि इस लोभ से मैं बहुत सुखी एवं समृद्ध हो जाऊँगा। जब व्यक्ति के मन में किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा इतनी प्रबल हो जाती है कि वह सभी सीमाओं को पार कर जाता है तो उस व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है। लोभी कुत्ता मांस के टुकड़े की परछाई पानी में देखकर लोभवश दूसरे टुकड़े को पाने के लिए जब मुँह खोलता है तो वह पहले टुकड़े से भी हाथ धो बैठता है। इसी प्रकार सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी को मारकर एक ही दिन में अमीर बनने की सोच सोचने वाला व्यक्ति उस मुर्गी से भी हाथ धो बैठता है। लोभी व्यक्ति को यह अहसास ही नहीं होता कि हमें भी कोई देख रहा है या फिर इसका परिणाम क्या होगा? उसकी सीमित एवं स्वार्थी सोच उसे केवल अपने तक ही सीमित रखती है।

पण्डित गंगा राम का मन भी कीमती भव्य कंगन को देखकर बदल गया। उसने सोचा कि क्यों न मैं दूसरे रास्ते से अपने घर चला जाऊँ। रविदास को क्या पता है कि गंगा माता ने मुझे कोई कंगन दिया है या नहीं? मैंने कौन सा किसी को बताना है। घर जाते ही पण्डित ने अपनी पण्डिताइन को कंगन दिखाया। वह अमूल्य कंगन देखकर फूली न समाई। पूछने लगी. पतिदेव! यह अनुपम कंगन आपको कहां से मिला। हमारे घर तो रोटी के भी लाले पड़े रहते हैं और आप ने यह हीरों से जड़ा कंगन कहाँ से बनवाया है? पण्डित ने कहा धीरे बोल, कोई सुन लेगा। यह कंगन तो गंगा माता ने अपनी ओर से रविदास के लिए भेंट भेजी थी, पर मैं आप के लिए ले आया। अब तुम इसे छिपा कर रख देना, किसी को दिखाना मत और इसे पहन कर बाहर भी मत जाना। पर स्त्री जाति आभूषण देखकर अपने पर कैसे नियंत्रण रख सकती है? यह कंगन तो वैसे भी बहुत ही लुभावना और अमूल्य था। पण्डिताइन ने पण्डित के मना करने पर भी कंगन हाथ में पहन लिया।

कुछ समय के बाद कंगन की बात रानी को भी पता चल गई। अब रानी राजा को कहने लगी कि गंगा राम की पत्नी के पास जो कंगन है, वह कंगन किसी भी तरीके से मुझे लाकर दो। राजा ने गंगा राम से वह कीमती कंगन मंगवा लिया। पण्डित की स्त्री के हाथ से कंगन रानी के हाथ में चला गया। रानी ने जब कंगन पहना तो उस के हाथ की सुंदरता कई गुणा बढ़ गई, पर जब दूसरे हाथ पर नजर डाली तो कंगन रहित हाथ दूसरे हाथ के सामने फीका पड़ रहा था। रानी ने राजा को कहा कि पण्डित को कहो, ऐसा दूसरा कंगन भी मुझे लाकर दे। राजा ने रानी को समझाया कि 'रानी ! न जाने

यह कीमती कंगन गंगा राम के हाथ कैसे आ गया है? यह कोई बाज़ार में बिकने वाली चीज़ नहीं है। पर रानी ने राजा की एक न सुनी, रानी जिद्द करने लगी।

आखिर राजा ने पण्डित को बुलावा भेजा और उसे ऐसा ही दूसरा कंगन लाने को कहा। पण्डित गंगा राम ने राजा के सामने सारी सच्ची बात खोलकर रख दी। पण्डित ने मन में सोचा कि लोभ के कारण मैं बेईमान भी बना और मुसीबत में भी फंस गया हूँ। पता नहीं उस समय मेरी बुद्धि पर पर्दा क्यों पड़ गया?

जदों आऊंदे इनसान दे दिन मंदे,
गल्ल होर दी होर विचार बैठे।
घरों जाए जुआरिया जीतने नूँ
अग्गे जा के दौलत हार बैठे।
बन्दा सोचदा कम्म जरूर करना
अग्गे नालों भी उह बिगाड़ बैठे।
रावण गया सी सीता चुरावने नूँ
जड़ कुल दी उह उखाड़ बैठे।
पण्डित सोचया कंगन मैं नहीं दसना
सतगुरू नज़र सी रक्ख संसार बैठे।

पण्डित ने कहा कि राजा! यह कंगन तो मैं धोखे से अपने घर ले आया हूँ। यह कंगन गंगा माई ने महापुरुष रविदास जी को भेंटा दी थी जिसे मैं लोभवश अपने साथ ले आया। अब मैं इसके जैसा दूसरा कंगन कहाँ से ला सकता हूँ? मुझे क्षमा कीजिए। पर राजा ने कहा कि पण्डित जी ! तुझे दूसरा कंगन लाना ही होगा अन्यथा तुझे मौत के घाट उतार दिया जाएगा। लोभी पण्डित बीती घड़ी के लिए पछता रहा था पर "अब पछताए क्या होत जब चिड़िया चुग गई खेत" । विवश पण्डित ने सोचा कि अब सद्गुरु ही इस समस्या का समाधान निकाल सकते हैं।

वह सद्गुरु रविदास महाराज जी के चरणों में गया, माफी माँगी और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा "महाराज मुझे क्षमा कीजिए और मेरी रक्षा कीजिए। सद्गुरु कहने लगे कि पण्डित जी, मुझे तेरी बात समझ में नहीं आ रही कि आप किस बात की क्षमा मांग रहे हो? पहले मुझे यह बताओ कि क्या तुमने मेरा कसीरा गंगा माई को भेंट किया था या उसे ऐसे ही पानी में बहा दिया था? गंगा राम बोला - महाराज जी! आप का भेजा हुआ कसीरा गंगा माई ने हाथ निकाल कर स्वीकार किया था और उसके बदले में गंगा माई ने आपको एक अमूल्य कंगन भी भेंट के रूप में भेजा था जिसे देखकर मेरा हृदय बेईमान हो गया और वह कंगन किसी तरह रानी के पास पहुँच गया। अब वह दूसरे कंगन के लिए आग्रह कर रही है। इसीलिए मुझे अब आपके पास आना पड़ा। अब वैसा ही दूसरा कंगन मिलने पर ही मेरी जान बच सकती है।

मुझे बहुत पश्चाताप् हो रहा है क्योंकि मैंने आप से सारी बात छिपाकर रखी। अब पण्डित की बात सुनकर सद्गुरु जी कहने लगे कि तुम्हें गंगा माता के कहे अनुसार ही कार्य करना चाहिए था। जब कुंभ में स्नान करने के लिए इतनी दूर से गए भी और स्नान कर स्वयं को पवित्र भी किया तो फिर उस पवित्र गंगा माँ की बात भी तुम्हें माननी चाहिए थी। दिखावे का गंगा स्नान कर तुमने पापों के बोझ को बढ़ा लिया है। तन तो साफ कर आए पर मन किसने बदलना था? उसमें भरी मैल को साथ ही ले आए? अब तुम ही बताओ कि मैं क्या कर सकता हूँ? पण्डित जानता था कि जिस गंगा माई ने कसीरे की भेंटा के बदले अमूल्य कंगन भेजा है और दर्शन करने की प्रार्थना भी की है, वह सद्गुरु रविदास महाराज जी सब कुछ कर सकते हैं। अपनी भूल स्वीकार करते हुए गंगा राम ने महाराज जी को दण्डवत प्रणाम किया और प्रार्थना की कि मेरा गुनाह माफ कर दीजिए और रानी के लिए कंगन भी दे दीजिए। सद्गुरु जी पण्डित पंडित गंगा राम की दशा देखकर पसीज गए। दीनबन्धु रविदास महाराज जी ने पण्डित की विनती स्वीकार कर ली क्योंकि पूर्ण संत दया का सागर होते हैं, पापी को भी अपने हृदय से लगा कर उसका उद्धार कर देते हैं तभी तो कहा गया है :-

आग लगी आकाश को,
झड़ झड़ पैन अंगियार।
सन्त न होते जगत में तो,
जल मरता संसार ।

सद्गुरु जी कहने लगे कि पण्डित जी ! आप रानी को साथ ले आओ और अपनी पसंद का कंगन पहचान कर ले जाओ। पण्डित जी ने यह सुनकर चैन की सांस ली। घर वापस आया तो अपनी पत्नी से कहने लगा- "आज तुमने मुझे मरवा देना था पर सद्गुरु ने मेरी पुकार सुन ली और मेरा गुनाह माफ करके कंगन देना स्वीकार कर लिया है।" सुबह होते ही गंगा राम राजा के पास गया और कहने लगा कि आप को कल मेरे साथ रविदास महाराज जी के पास जाना होगा, क्योंकि रविदास जी ने कहा है कि आप अपनी पसंद का कंगन ले जाना। राजा सुनकर हैरान रह गया कि रविदास के पास इतने ज्यादा कंगन है? राजा अपने मंत्रियों सहित रविदास महाराज जी के पास पहुँच गया। रानी भी साथ गई। गुरु जी कहने लगे कि पण्डित जी, सुनाइए, कैसे आना हुआ? पण्डित जी हाथ जोड़कर बोले, - महाराज, कंगन के लिए आप जी के आदेशानुसार रानी को साथ लेकर आया हूँ। सद्गुरु जी कहने लगे, 'अच्छा रानी! अपनी पसंद का एक जोडी कंगन ही लेना। कहीं लालच न कर बैठना। यदि पण्डित की तरह लालच में आ गए तो उसका परिणाम भी आप जानते हो? सद्गुरु जी ने अपनी कठौती (जूते गाँठने के लिए रखी गई) उठाई और कहा कि इसमें से कंगन ले लो। जब रानी ने नीचे नजर दौड़ाई तो देखा कि गंगा का प्रवाह बह रहा था जिसमें हजारों कंगन थे। राजा चंद्र प्रताप ने भी सारा कौतुक देखा और हैरान रह गया। रविदास महाराज जी की ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के कारण ही तो यह मुहावरा बना हुआ है :-

मन चंगा तो कठौती में गंगा

रानी और राजा कंगन पाकर और सद्‌गुरु रविदास जी के दर्शन पाकर अपने आप को धन्य समझने लगे। वे सभी परिवार सहित सद्‌गुरु जी के श्रद्‌धालु बन गए। पण्डित गंगाराम की भी जान बच गई और खुशी-खुशी वह घर वापस आ गया। सद्‌गुरु रविदास महाराज जी की शोभा घर-घर होने लगी। भाई गुरदास जी ने इस समय का वर्णन करते हुए अपनी वाणी में ऐसा लिखा है-

भगतु भगतु जगि वजिया चहूँ चक्कां दे विचि चमिरेटा।
पाणा गंदै राह विच कुला धर्म ढोइ ढोर समेटा ।।
जिऊं कर मैले कपड़े, हीरा लाल अमोल पलेटा ।
चहु बरनां उपदेशदा, गिआन धियान कर भगत सहेटा ।
नावन आइआ संग मिल, बनारस कर गंगा घेटा ।
कढ कसीरा सउपिआ, रविदास गंगा दी भेंटा ।
लगा पुरब अभीच दा, डिठा चलित अचरज अमेटा ।।
लइआ कसीरा हथ कढ, सूत इक जिऊं ताना पेटा ।।
भगत जना हरि मां पिउ बेटा ।।

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने जहाँ अपने कार्यों से यह सिद्‌ध कर दिया कि कोई भी व्यक्ति अपने कर्मों से ही ऊँच बनता है, वहाँ यह भी प्रमाणित कर दिया कि अपने हाथों से की गई किरत और कमाई ही सच्ची कमाई है। नेक काम करना ही भगवान की पूजा है। कर्तव्य निष्ठा ही सबसे बड़ा दान है। यदि तुम्हारा मन पवित्र है तो प्रभु तुम पर प्रसन्न होगा। तीर्थ स्थानों पर जाकर तुम्हारे तन की मैल तो उतर सकती है, मन की नहीं। मन को पवित्र करने के लिए हमें लोभ, मोह, बेईमानी आदि विकारों की मैल को प्रभु-भक्ति और सद्‌गुणों से धोना होगा। जब हम तन-मन से निर्मल हो जाएंगे तो हम भी उस सच्ची परम शक्ति के साथ अभेद हो जाएंगे। सच्चा मन ही एक ऐसा तीर्थ स्थान है जहां भगवान का निवास है।

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जा कै हिरदै साँच है, तांकि हिरदै आप ।।

मीरा बाई को दीक्षा

गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी ।
चोट लगी निज नाम, हरि की मद्वारे हियड़े खटकी ।।

यद्यपि मीराबाई के जीवन काल के संबंध में एक मत नहीं है फिर भी इसके लिए सामान्यतः संवत् 1555 से 1603 विक्रमी का समय स्वीकार किया गया है। इस दृष्टि से मीरा सद्गुरु रविदास, सद्गुरु कबीर और सद्गुरु नामदेव जी की परवर्ती सिद्ध होती हैं और सूरदास, तुलसीदास की पूर्ववर्ती। उस समय सद्गुरु रविदास महाराज जी द्वारा चलाया गया भक्ति-मार्ग अपने उत्थान की ओर अग्रसर था और भक्ति-काल के सन्त महापुरुषों ने अपनी वाणी द्वारा उस समय के सांप्रदायिक भेद-भावों, वर्ण एवं जाति की भिन्नता को एवं कृत्रिम विधि-विधानों, बाहरी आडम्बरों की निरर्थकता को खण्डित कर दिया हुआ था किन्तु अभी तक सगुण लीलाओं का निर्गुण विचारधारा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। सभी तरफ सन्तमत का ही बोलबाला था।

मीरा का जन्म राजपूत घराने के कुड़की गाँव (राजस्थान) में राव रत्न सिंह राठौर के परिवार में हुआ। बचपन में ही माता की मृत्यु हो जाने के कारण मीरा का पालन-पोषण उसके पिता और दादा के द्वारा हुआ। अपने माता-पिता की इकलौती संतान होने के कारण इसे भाई-बहनों और माता के प्यार से भी वंचित रहना पड़ा। मीरा के पिता सगुण कृष्ण के उपासक थे। यही कारण था कि बचपन में मीरा श्रीकृष्ण की मूर्ति को अपने साथ लगाकर प्रभु भजन गाया करती थी। मीरा की पदावली में भी प्रायः कृष्ण के प्रति आत्म-निवदेन करने के भाव से मीरा का बाल्यकालीन प्रभाव स्पष्ट होता है।

जब मीरा बडी हुई तो उसका विवाह मेवाड़ के राणा सांगा के सबसे बड़े पुत्र भोजराज के साथ हुआ। मीरा हमेशा प्रभु की याद में खोई रहती थी। अपना समय भजन-कीर्तन में व्यतीत करती और साधु-संगत में भी जाया करती। जिस कारण उसके पति और ससुराल वाले उसे अच्छा न समझते । वे मीरा को घर की चार-दीवारी में रखकर उसे एक सामान्य गृहिणी के रूप में देखना चाहते थे। लेकिन मीरा तो बचपन से ही प्रभु के नाम में रंगी अपना सर्वस्व मालिक को सौंप चुकी थी। घर-परिवार की मर्यादाओं की उसे बिल्कुल चिन्ता नहीं थी। उसमें अद्भुत साहस, धैर्य, सहजता और सजगता थी। अपनी बौद्धिकता, भक्ति-भावना एवं क्रिया-कलापों की दृष्टि से मध्यकालीन उच्च सामंत वर्ग में पोषित राजकुमारी मीरा को शाही भवन की दीवारें साधु-सन्तों के पास जाने और प्रभु-भजन करने से न रोक सकी। यह तथ्य मीरा के व्यक्तित्व की सबलता का द्योतक है।

अतः मीरा के विचार और उसके पति का स्वभाव आपस में मेल नहीं खाता था। ससुराल वाले भी राजा भोजराज की मृत्यु के बाद मीरा की यह स्थिति देखकर दुखी रहते थे। आखिर मीरा ने मेवाड़ को छोड़ ही दिया। अब तक उसके पिता जी खानवा के युद्ध में बाबर के साथ लड़ाई करते हुए मारे गए थे और दादा राऊ दूदा भी परलोक सिधार गए थे। अब मीरा जो बचपन से प्रभु के नाम में

विलीन हो चुकी थी, उसके मन में और भी अधिक वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह गुरु की तलाश में जगह-जगह भटकने लगी। सच्चे सद्गुरु की खोज करने लगी।

कुछ विद्वान मीरा को वल्लभ सम्प्रदाय से जोड़ना चाहते हैं जो निराधार है। अवश्य ही अपने पारिवारिक परिवेश के कारण उसका नाता इस सम्प्रदाय से रहा होगा लेकिन मीरा ने इस सम्प्रदाय की विचारधारा को न तो कभी अपने जीवन में अपनाया और न ही वहाँ से दीक्षा ग्रहण की। वार्ता के अनुसार वल्लम सम्प्रदाय के प्रतिनिधि गोबिन्द दूबे मीरा के पास गए पर वे मीरा से अप्रसन्न होकर वापस लौटे तथा मीरा की दी हुई भेंट को अस्वीकार करते हुए उन्होंने कहा था -

"तू तो श्री आचार्या महाप्रभून की नहीं होत ताते भेंट हाथ से छुवोंगी नहीं।"

एक अन्य उल्लेख के अनुसार मीरा स्वयं भी वृंदावन आई थी लेकिन वहाँ रुकी नहीं। इन सभी बातों से यह सिद्ध होता है कि वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों ने मीरा को अपने मत की दीक्षा देने का प्रयास किया लेकिन इसमें उन्हें असफलता मिली।

सद्गुरु रविदास महाराज जी की महिमा मीरा अपनी सास झालां बाई जो कि चितौड़ की रानी थी, से पहले ही सुन चुकी थी। गुरु की तलाश में मीरा बनारस पहुँची। गुरु दर्शन करके और महाराज जी की इलाही वाणी सुनकर मीरा को परम आनन्द की अनुभूति हुई। उसने सद्गुरु रविदास महाराज जी से दीक्षा ग्रहण की। स्वयं मीरा की पदावली में गुरु के रूप में सद्गुरु रविदास महाराज जी का स्मरण बार-बार आया है :-

गुरु मिलिया रैदासजी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी।
चोट लगी निज नाम, हरि की मद्वारे हियड़े खटकी ।।

सद्गुरु रविदास महाराज जी को पाकर मीरा धन्य हो गई। नाम की अमूल्य दात से वह समृद्ध हो गई और सद्गुरु के गुण गाने लगी -

गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुर से कलम भिड़ी।
सतिगुर सैन दई जब आके, जोत में जोत रली ।।
(मीराबाई पदावली पृ० 31. पद 14)

केवल सद्गुरु रविदास की कृपा द्वारा ही मीरा को अपने आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति हो सकी थी।

मीरा पर सन्तमत का गहरा प्रभाव था। उसकी वाणी पर सन्तमत की छाप गुरु रविदास जी के कारण ही थी।

जोगिया जी आवो ने या तेस
म्हारा सतिगुरू बेगा आज्या जी
अरज करै मीरा दासी जी,

गुरू पद-रज की मैं प्यासी जी।
तरूगुरू म्हाँरी प्रीत निमाज्यों जी।

अनेक स्थलों पर मीरा ने ईश्वर के निर्गुण निराकार एवं निरंजन रूप को मान्यता देते हुए आत्मा और परमात्मा की एकता का प्रतिपादन किया है:-

एक ओर मीरा कहती है :-

"जाको नाम निरंजण कुहिए ताको ध्यान धरूँगी"

तो दूसरी ओर वह स्वयं को उस मालिक से अभिन्न मानती है ।

"तुम बिच हम बिच अंतर नाही।
जैसे सूरज धामा।"

सद्गुरु रविदास महाराज जी के चरणों से जुड़कर मीरा उस प्रभु से अभेद हो जाती है। ज्ञान की प्राप्ति कर उसे सर्वत्र आत्मा के दर्शन हो जाते हैं तो इस प्रकार ज्ञान की चर्चा करती हुई मीरा कहती है :-

सतगुरु भेद बताइया,
खोली भरम की किंवारी हो।
सब घट दीसै आत्मा,
सबही सूँ न्यारी हो ।।
दीपक जोऊँ ग्यान का चढूँ
अगम अटारी हो।
मीरां दासी राम की इमरत बलिहारी हो।

सद्गुरु रविदास महाराज जी से दीक्षा प्राप्त कर मीरा की भक्ति एवं प्रेम के इस विकास के साथ ही उसका जीवन कड़ी परीक्षाओं के घेरे में घिर गया। उस समय की परम्पराओं के विपरीत जब उसने प्रचलित धार्मिक मान्यताओं और रुढ़िवादी बन्धनों को तोड़ कर साधु-सन्तों के साथ निरन्त उठना-बैठना शुरु कर दिया और सद्गुरु रविदास महाराज जी की संगति में निःसंकोच जाना शुरू कर दिया तो पण्डितों, पुरोहितों और चितौडगढ़ राज-दरबार के कट्टरपथी क्रोध की अग्नि में जलने लगे। मेवाड़ के राणा और उनका राज परिवार जो अपने राज वंश की महिलाओं का अन्य लोगों के साथ मिलना जुलना पसंद नहीं करता था और अपनी प्रतिष्ठा के गर्व में डूबा रहता था। वह इस बात को सहन न कर सका कि उनके घर की बहु ऐसे महात्मा को गुरु माने जो कि उस समाज की निम्न चमार जाति से संबंध रखता है।

उसने मीरा की कटु आलोचना की, निन्दा भी की पर जब इन बातों का मीरा पर कोई प्रभाव न हुआ और मीरा हर बात का उत्तर विनम्रता एवं सहनशीलता से देती रही। तभी उच्च वर्ग के कट्टरपंथी एवं सामन्तों ने मीरा के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने शुरु कर दिए। केवल राणा सांगा ही मीरां को समझ सकते थे लेकिन 1527 ई० में उनका देहांत हो गया। मेवाड़ का नया शासक राणा रत्न मीरा को राज घराने का कलंक मानने लगा। उसने भोजराज की बहन ऊदाबाई से मिलकर मीरा को सुधारने के लिए उसे अनेक शारीरिक यातनाएँ और धमकियाँ देनी शुरु कर दीं। मीरा पर कई तरह के दोष लगाकर उसे अपमानित करने की कोशिश की गई। यहाँ तक कि राणा रत्न सिंह ने मीरा को मारने के लिए तलवार भी उठाई पर प्रभु प्रेम में खोई मीरा के तेज़ प्रकाश ने उस तलवार की तेज़ धार को भी नाकामयाब बनाकर राणा को चकाचौंध कर दिया। राणा घबराकर तेजी से कमरे से बाहर निकल आया। इस प्रकार उनके षड्यन्त्रों से मीरा का अपने गुरु रविदास के प्रति विश्वास और भी दृढ होता गया।

कहा जाता है कि राणा ने दो स्त्रियों को मीरा को समझाने के लिए भेजा, पर दोनों ही मीरा की प्रशंसक बन गई। मीरा अब सद्‌गुरु प्रेम में पूर्णतया डूब चुकी थी। वह सदा प्रभु के इन्तजार में टकटकी लगाए मिलाप की उत्कण्ठा में बैठी रहती।

सद्‌गुरु रविदास के साथ मीरा का सम्पर्क अधिक समय तक न रह सका, जिस कारण उसका अधिकांश जीवन अपने प्यारे सद्‌गुरु के वियोग में ही बीता। अपने गुरु के प्रति गहरी भक्ति और प्रीति के फलस्वरूप मीरा के अन्तर में आत्मिक अनुभव होने लगा। उसने इसका जिक्र अपने पदों में किया है और कहा है कि यह प्रसाद् उसे सद्‌गुरु की कृपा से ही प्राप्त हुआ है -

जनम् जनम् का टोटा भाग्या, गुरु मिल्या दातार।
इंगला पिंगला सुखमन, नारी सहजै रच्यो धरतास
मीरा ने गुरु गरवा मिलिया, जब पायो बिसवास ।

राणा रत्न सिंह की मृत्यु सन् 1531 में हो गई पर मीरा की परीक्षाओं का अंत न हुआ। मेवाड़ के नए शासक राणा विक्रमादित्य ने मीरा को विष देकर मारने की कोशिश की। दयाराम नामक एक व्यक्ति के हाथ सोने के कटोरे मे विष भेजा और कहा कि मीरा को कहना यह चरणामृत है जो गुरु रविदास जी ने आपके लिए भेजा है।

मीरा ने चरणामृत का नाम सुनकर उसे झट पी लिया, परन्तु मीरा पर विष का कोई प्रभाव न हुआ। उसका मुख दिव्य प्रेम की अलौकिक ज्योति से चमक रहा था।

जैसे कंचन दहन अग्नि में, निकसत बाराबनी।

सद्‌गुरु जी की कृपा से विष भी अमृत में बदल जाता है। जिसका प्रभु से प्रेम हो, उसका कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता। मीरा का सद्‌गुरु-प्रेम अब और तीव्र हो उठा और मीरा की ख्याति भी अपने सद्‌गुरु की तरह प्रेम-भक्त के रूप में फैलने लगी। प्रभु की संगति करने से जीव महान् हो जाता है।

सद्गुरु रविदास महाराज जी अपनी वाणी में नाम सिमरन की महिमा एवं साध संगत की महानता का वर्णन करते हुए लिखते हैं:-

तुम चंदन हम इरंड बापुरे संगि तुमारे बासा।
नीच रूख ते ऊच भए है गंध सुगंध निवासा ।

(पृष्ठ संख्या 486)

इस प्रकार सद्गुरु रविदास महाराज जी से राम-नाम धन पाकर मीरा स्वयं उस मालिक के साथ अभेद हो जाती है। लोग भी मीरा की प्रशंसा करने लगते हैं, उसके भजन-कीर्तन सुनने के लिए उसके पास आने लगे।

गुरु सद्गुरु रविदास महाराज जी की अपार कृपा से मीरा की लोकप्रियता भी सारे संसार में फैल गई। दीवानी मीरा सद्गुरु के प्रेम में रंगी लोक-लाज, कुल की मर्यादाओं को पार कर चुकी थी। अब निंदा-प्रशंसा, वैर-मित्रता, सभी उसे एक समान लगते थे। यह सारा कुछ देख कर राणा विक्रम का रोष और भी बढ़ गया। उसने अपने सलाहकारों से मिलकर मीरा को जान से मार डालने के लिए एक अत्यन्त विषैले नाग को आभूषणों के डिब्बे में रखकर भेजा और कहा कि यह राणा की ओर से एक बहुमूल्य हार की भेंट है :-

पेट्या बासक भेजियों,
योधे मोतीड़ा रोहारा।
नाग गला में पहरियों,
म्यारे महल भयो उजियार।
सांप पिटारो मोकल्यो,
दो मीरा के हाथ ।
खोल पिटारो देखियो,
हो गयो नोसरहार ।।

(मीरां सुधा सिंधु पृ० 279, 282)

प्रभु की कृपा से वह नाग भी मीरा का कुछ नहीं बिगाड़ सका। इस प्रकार मीरा ने जाति भेदभाव, संकीर्ण धार्मिकता, कर्मकाण्डों आदि के बन्धनों को नकार कर उस समय की झूठी शाही शान को और सामाजिक रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़कर सच्चे सद्गुरु रविदास जी की महानता को पहचाना। मध्यकालीन युग में फैली धार्मिक कट्टरता और अन्ध-विश्वासों की मैल को सद्गुरु महाराज जी और अन्य भक्त सन्त महापुरुषों ने धो डाला। आखिर महाराज जी की श्रेष्ठ और निर्गुण विचारधारा के आगे उस समय के उच्च सामन्त वर्ग को भी झुकना पड़ा। सद्गुरु रविदास महाराज जी की उच्च सोच का अंदाजा आप जी के शिष्यों से ही लगाया जा सकता है।

राजा लोग जो कि कसाई बन चुके थे वे तो सद्‌गुरु की शरण में गए ही, जो पुरुष थे, लेकिन उस समय की नारी जो मध्ययुगीन सामाजिक बुराइयों से ग्रस्त थी, जिसे पर्दे में रखा जाता था, सती होने के लिए विवश किया जाता और तरह-तरह की पाबन्दियाँ लगाकर उसे पुरुषों से नीचा दिखाया जाता था, वह पिछड़ी नारी तक भी महाराज जी की महानता की सुगन्ध पहुँच गई और रानी झालां बाई, मीरां बाई आदि रानियों ने अपने महलों को ठुकरा कर सद्‌गुरु रविदास जी के आश्रम में जाना शुरू कर दिया। मीरा ने अपनी पदावली में ऐसे सद्‌गुरु को पाकर कहा है:-

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो ।। टेक ।।
बस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर, किरपा कर अपनायो ।। 1 ।।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो ।। 2 ।।
खरचै नहि कोइ चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो।।3।।
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तर आयो ।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो।।4।।

'घनश्याम मंदिर' का निर्माण :

अपने सद्‌गुरु के प्रेम में डूबी मीरा प्रत्येक क्षण उस मालिक के सिमरन में बिताने लगी। अब उसे दिन-रात, मित्र-शत्रु, अपने-पराए, दुख-सुख में कोई अन्तर नज़र नहीं आता था। लोक-लाज, कुल की मर्यादा आदि सभी सीमाओं को मीरा अब पार कर चुकी थी। प्रभु के नाम का पक्का रंग उस पर चढ़ चुका था, जो उतरने वाला नहीं था।

जैसा रंगु कसुंभ का तैसा एहु संसारु।
मेरे रमईए रंगु मजीठ का कहु रविदास चमार ।।४।१।

(पृष्ठ संख्या 345)

मीरा के मन में विचार आया कि क्यों न सद्‌गुरु के नाम का एक सुन्दर पूजा स्थान बनाऊँ जिसमें बैठकर मैं उस मालिक के साथ बातें कर सकूँ, उसका गुणगान कर सकूँ। प्रभु कृपा से मीरा की सोच साकार हुई और उसने अपने प्रेम रूपी आँसुओं से और प्रभु-नाम की ईंटों से सुन्दर सुसज्जित पूजा-स्थान बनवाया। चितौड़गढ़ में स्थापित इस मन्दिर का नाम 'घनश्याम मंदिर रखा गया। जब मन्दिर-निर्माण का कार्य सम्पन्न हुआ तो उसके उद्‌घाटन और शुभारम्भ की बात होने लगी। मीरा के सगे-संबंधी और राज - पुरोहित को मीरा के निमंत्रण की इंतजार करने लगे। सोच रहे थे कि पता नहीं किस भाग्यशाली के कर कमलों से इस मंदिर का शिलान्यास किया जाएगा। मूर्ति स्थापना कौन करेगा? पर किसी भी भक्त के लिए उसके सद्‌गुरु के अतिरिक्त बड़ा कौन हो सकता है? मीरा ने अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा कि इस भाग्यशाली मंदिर का उद्‌घाटन और मूर्ति स्थापना मेरे प्यारे सद्‌गुरु श्री गुरु रविदास महाराज जी ही करेंगे।

मीरा की यह चाहत जब सभी को मालूम हुई तो जाति अहकारियों एवं स्वयं को बड़े-बड़े विद्वान समझने वाले ज्ञानियों को यह बात अच्छी न लगी। सभी एकत्र होकर मीरा की आलोचना करने लगे। कहने लगे कि हम कितने ज्ञानी हैं. वेदों के ज्ञाता है. पूरे समाज में हमारी प्रतिष्ठा है लेकिन इस मीरा ने तो हमारी इज्जत को मिट्टी में मिला दिया है. हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा। पर हम कर भी क्या सकते हैं? एक नीच जाति से संबंध रखने वाले रविदास को यहां बुलाकर, उससे मूर्ति का उद्घाटन करवा कर मीरा हमारी बदनामी करवाएगी। काफी विरोध हुआ पर मीरा अपने निर्णय पर अटल रही। उसने अपने विचार में कोई फेर-बदल नहीं किया।

अन्ततः पण्डितों को मीरा की बात मान कर शुभ मूहर्त निकालना पड़ा। मंदिर में मूर्तियों को स्थापित करने के लिए सुशोभित कर दिया गया।

उधर सद्गुरु रविदास महाराज जी को मूर्ति-स्थापना के लिए निमंत्रण भेज दिया। मीरा बड़ी बेसब्री से उस पल का इन्तज़ार करने लगी। सभी प्रभु-प्रेमियों ने मंदिर को सजाने का कार्य आरम्भ कर दिया। मंगलाचार होने लगा, पर जहाँ फूल हों वहाँ काँटों का होना भी स्वाभाविक है। कुछ ईर्ष्यालु इस समारोह को असफल बनाने और सदगुरु रविदास जी को नीचा दिखाने का उपाय सोचने लगे। मीरा के अडिग फैसले को गलत सिद्ध करने के लिए अपनी-अपनी योजना बनाने लगे। जाति-अभिमानी अंदर ही अंदर दुखी होकर सोचने लगे कि जब एक शक्तिशाली शेर भी मीरा का बाल बाँका न कर सका, मीरा को मारने के लिए भेजा गया विष भी अमृत में बदल गया और वह हमेशा हमसे जीतती ही रही जिस कारण उसका रविदास पर विश्वास पक्का होता गया, अब उसके विश्वास को किसी न किसी तरीके से चकनाचूर करना ही होगा। अंत में वे इस निर्णय तक पहुँचे कि मंदिर की जिस मूर्ति का उद्घाटन सुबह होना है, उसे रात को ही वहाँ से उठवा लिया जाए और जब रविदास वहाँ मूर्ति स्थापना समारोह का उद्घाटन करने आएँगे तो वहां मूर्तियों न होंगी तो हम यह शोर मचा देंगे कि भगवान एक शूद्र के हाथों से अपना उद्घाटन नहीं करवाना चाहते थे, इसलिए भगवान नाराज होकर यहाँ से गायब हो गये हैं।

इससे मूर्ति स्थापना समारोह में आए लोग रविदास को अपमानित करेंगे और मीरा की अपार श्रद्धा एवं विश्वास भी रविदास पर से उठ जाएगा। फिर तो मीरा को हमारे ही पास आना पड़ेगा और हम अपने कार्य में सफल हो जाएँगे।

आखिर वह शुभ घड़ी आ गई जिसका मीरा को इंतजार था। पूरे मंदिर को फूलों से सजाया गया, दीपमाला की गई और हर कोना जगमग करने लगा। लंगर पकने लगा। मीरा के विरोधियों ने मूर्तियां वहाँ से उठवा दीं। उद्घाटन की तैयारी पूर्ण हो गई। मीरा गुरु को मिलने के लिए व्याकुल खड़ी थी। वह सद्गुरु को पाने के लिए नयन बिछाए बैठी थी। जैसे-जैसे समय समीप आ रहा था, मीरा को गुरु की याद पहले से भी अधिक तड़पाने लगी :-

तुम देखयां बिनु कल न पड़त है जानत मेरी छाती ।
ऊँची चढ-चढ पंथ निहारू ये ये अखियां राती।

यह संसार कुल अर नातील दोउ कर जोडियो अरज करत हूं।
सुन लीजो मेरी बाती यह मन मेरो बड़ा हरामी
जिउ मद मातो हाथी सतिगरु दसत धरिउ सिर ऊपर आंकुश दे समझाती

(मीरा शब्दावली)

वेदना की पुकार सुन सद्गुरु रविदास महाराज जी चितौड़गढ़ पहुँच गए। सद्गुरु के दर्शन पा कर सभी के चेहरे गुलाब की तरह खिल गए। मीरा और प्रभु-प्रेमी संगत प्रभु-यश में लीन शबद-गायन करने लगे, लेकिन मीरा की विचारधारा के विरोधी और सांप्रदायिकता की आग में जलने वाले लोगों की ईर्ष्या एवं क्रोध की अग्नि बढ़ती जा रही थी। महाराज जी के प्रवेश पर सभी ओर से जय-जयकार के नारे गूंजने लगे। सद्गुरु का दर्शन कर सभी लोग प्रसन्न थे। संगत सहित जब सद्गुरु महाराज जी ने मंदिर में प्रवेश किया तो मीरा ने सद्गुरु को करबद्ध प्रार्थना करते हुए पर्दा हटाकर मूर्ति-स्थापना की रस्म अदा करने को कहा।

महाराज जी ने जब द्वार का पर्दा हटाया तो उसमें कोई भी मूर्ति नहीं थी। सभी के चेहरे पीले पड़ गए, रौनक जाती रही। संगत परेशान हो गई पर जाति अभिमानियों के मन में लड्डू फूटने लगे। जब मूर्तियों के न होने का कारण पूछा गया तो वही अभिमानी बोले कि शायद भगवान मीरा से रुष्ट हो गए हैं, क्योंकि एक शूद्र व्यक्ति की परछाई से अगर आम इंसान भी भ्रष्ट हो जाता है और उस शूद्र के हाथों से भगवान की मूर्ति को स्थापित करना भगवान को कैसे स्वीकार हो सकता है? कभी नहीं? शूद्र तो चाहे बहुत बड़ा ज्ञानी भी क्यों न हो तो भी वह पूजा-योग्य नहीं हो सकता। हमारे धर्म-ग्रन्थ इसके हित में नहीं है।

लेकिन सद्गुरु जी भी अन्तर्यामी थे। मीरा ने गुरु जी से प्रार्थना की और कहा, 'मेरे मालिका! आप ने अपने चमत्कारों से समय-समय पर सभी के अभिमान को तोड़ा है। चारों युगों के जनेऊ दिखाए। पत्थरों को तैराया, विष को अमृत बना दिया, अब भी कृपा कीजिए और मूर्तियों को अपने स्थान पर लाइए। महाराज जी, जो प्रभु का रूप थे, उन्हें करामातों में विश्वास नहीं था और वह अवैज्ञानिक कार्य नहीं करना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि लोगों को भ्रमों-भुलावों में डालकर अन्धविश्वासों को बढ़ावा दिया जाए। वे तो केवल इतना बताना चाहते थे कि प्रभु के नाम में कितनी शक्ति है और जो सच्चे हृदय से उस मालिक के चरणों में अपनी लिव लगा लेते हैं, मालिक उनके लिए सारा कुछ कर डालते हैं चाहे वह असंभव भी क्यों न हो।

भक्त मीरा की करुण स्थिति को देखकर करुणानिधि सद्गुरु रविदास जी का हृदय पिघल गया और प्रभु चरणों में निवेदन करने लगे :-

मेरी संगति पोच सोच दिनु राती मेरा करमु कुटिलता जनमु कुभांती ।।१।।
रामु गुसईआ जीअ के जीवना। मोहि न बिसारहु मै जनु तेरा ।।१।। रहाउ ।।

(पृष्ठ संख्या 345)

सद्‌गुरु की प्रार्थना सुन पत्थर की मूर्तियां अपने स्थान पर पहुँच गई। चारों ओर फिर से खुशी की लहर दौड़ गई। लोग सद्‌गुरु की महिमा गाने लगे और रब्बी नूर सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के दर्शन कर उन्हें निहारने लगे। मीरा ऐसे सद्‌गुरु को पाकर धन्य हो गई।

पायो जी मैने राम रतन धन पायो।

आज भी वह घनश्याम मंदिर वहां स्थित हैं। लोग सुबह-शाम वहाँ सत्संग करते हैं। सद्‌गुरु की याद में बनाई छतरी और चरण पादुका आज भी वहीं मौजूद हैं।

समारोह की समाप्ति के बाद मीरा सोचने लगी कि जो मेरे सगे-संबंधी है, नजदीकी हैं, उन्होंने मेरी बदनामी करने में, मुझे मार डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यह बात अलग है कि मेरे सद्‌गुरु ने मेरा बाल भी बाँका नहीं होने दिया। अब मैं ऐसे लोगो के बीच नहीं रहूँगी। यहाँ मेरा रहना ठीक नहीं है। उसने शाही महल छोड कर तीर्थ यात्रा पर जाने का निश्चय कर लिया, क्योंकि उसे लग रहा था कि यहां वह बंद पिंजरे में रहने वाले पक्षी के समान है, जिसे सोने के पिंजरे में कैद कर अच्छे-अच्छे भोजन और सभी सुख-सुविधाएं देकर उसके उड़ने वाले पंखों को काट दिया हो। पिंजरे में बंद पक्षी भी हमेशा उड़ने की चाह में रहते हैं। निःसन्देह पिंजरे में अच्छे-अच्छे भोजन भी मिल जायें लेकिन उन्हें पसंद नहीं आते।

हम पंछी उन्मुक्त गगन के. पिंरजनबद्ध न गा पाएंगे कनक तीलियों से टकराकर कोमल पंख टूट जाएंगे। कनक कटोरी की मैदा से कहीं भली है कटुक निबौरी। पिंजरे के खुलने पर ऐसा पंछी एकदम फिर से उड़ने को आतुर रहता है और आखिर समय पाकर मुक्त हो ही जाता है।

इसी तरह दुनिया के बंधनों को तोड़ कर मीरा भी अब आजाद रहना चाहती थी। चित्तौड़गढ़ का जीवन उसे गुलामी भरा लग रहा था। उस पराधीन नारी को सद्‌गुरु के प्रेम ने बल दिया और वह गुलामी की जंजीरों को तोड कर ऐसी जगह जाना चाहती थी, जहां एकांतवास हो, शांत वातावरण हो। अतः वह चित्तौड़गढ से बाहर निकल पड़ी।

सर्वप्रथम मीरा वृंदावन पहुँची। वह जानती थी कि यह स्थान ऋषि-मुनियों की भूमि है और यहाँ महापुरुष कवि गोस्वामी जी रहते हैं। वह उनके दर्शनों के लिए आई। आश्रम में पहुँच कर आप ने बाहर खड़े द्वारपालों से गोस्वामी जी के दर्शनों की इच्छा प्रकट की, तो उत्तर मिला कि गोस्वामी जी स्त्रियों को दर्शन नहीं देते। उनके सामने वे आते ही नहीं, लेकिन मीरा जी! आप की महिमा तो चारों ओर फैली हुई है। आप की महानता के कारण हम आपको कुटिया तक ले जा सकते हैं। पर गोस्वामी जी के दर्शन नहीं करवा सकते। वे किसी नारी का मुख नहीं देखते। यह सभी कुछ जान कर मीरा को बहुत आश्चर्य हुआ। पहले तो मन बना कि दर्शन किए बिना ही वापस लौट जाए, लेकिन बाद में उसे याद आया कि उसके सद्‌गुरु रविदास महाराज जी को भी तो ऐसी कई समस्याओं में से गुज़रना पड़ा था। जो लोग न तो उनके दर्शन करना चाहते थे और न ही उनके ज्ञान की बातें ही सुनना पसंद करते थे, जब उन्होंने सद्‌गुरु जी की बाणी सुनी, उन्हें ज्ञान मिला तो इतने प्रभावित हुए कि उनको

महाराज जी के चरणों में नतमस्तक होना पड़ा था। मैं भी अपने तर्कों से गोस्वामी जी की अज्ञानता और नारी के प्रति घृणा की भावना को दूर करूँगी। हो सकता है कि गोस्वामी जी को मेरी बात समझ में आ जाए। ऐसे विचार मन में लेकर मीरा स्वामी जी की कुटिया तक जा पहुंची। सद्गुरु के आशीर्वाद से मीरा का आत्मवश्वास शक्तिशाली हो चुका था। वह रुढ़िवादिता और कर्मकांडों से ऊपर उठ चुकी थी। उसे अपने सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त हो चुका था कि पुरुष तो केवल और केवल वह परम पिता परमात्मा है और हम सभी जीव चाहे नर हो या नारी, उस की पत्नियां हैं, अकाल पुरख केवल एक है। इसलिए मीरा ने गोस्वामी जी को कहा कि तुम किस स्त्री की बात करते हो? क्या तुम अपने आप को पुरुष समझते हो? गोस्वामी जी ! पुरुष केवल एक ही है और हम सभी उस की नारियाँ हैं। जब एक नारी के मुख से ये बातें सुनीं तो गोस्वामी जी की बुद्धि पर पड़ा अज्ञानता का पर्दा दूर हो गया और वे अपनी कुटिया से बाहर आ गए। मीरा के चरणों में गिर पड़े। गोस्वामी जी की आँखें आँसुओं से नम हो गईं। कहने लगे, 'मीरा तू धन्य है और धन्य हैं, तेरे सद्गुरु, जिन्होंने तुझे इतनी शक्ति, भक्ति और ज्ञान दिया है। तुझे पूर्ण संत की प्राप्ति हो गई है।

वृंदावन के बाद के जीवन के बारे में इतिहास में बहुत कम प्रमाण मिलते हैं। उस के अंतिम जीवन के बारे में भी अटकलें ही लगाई जाती हैं, निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मीरा बाई राजपूत घराने से संबंध रखती थी और उस समय एक राजपूत खानदान की बहु का घर से बाहर निकल कर साधुओं की संगत करना, भजन-कीर्तन करना आदि एक राजपूत औरत के नाते बहुत बड़ा साहसिक कार्य था और इससे भी बढ़कर जब उसने सद्गुरु रविदास महाराज जी को गुरु धारण कर लिया जो कि नीच समझी जाने वाली चमार जाति से संबंधित थे।

उनकी महानता एवं विद्वता को मीरा का तपस्वी हृदय तो समझ सकता था, पर आप ही बताएं कि आज से लगभग छह सौ वर्ष पहले अपने आप को ऊँच एवं स्वर्ण जाति का समझने वाले लोगों से यह कैसे सहन हो सकता था कि राजमहलों की रानी निम्न वर्ग के महापुरुष को अपना गुरु बनाए और दिन रात उसकी सेवा-सुश्रुषा में बिताए? यही कारण था कि जब मीरा के अडिग, दृढ़ निर्णय के सामने उन अहंकारियों की कोई पेश न चली तो उन्होंने मीरा को तंग करना शुरु कर दिया। अनेक प्रकार के दोष लगाने के साथ-साथ उसे जान से मार डालने का प्रयास किया पर

'जिस के सिर ऊपर तू स्वामी, सो दुख कैसा पाय'

जो शूद्र जाति के महापुरुष का नाम सुनना भी नहीं पसंद करते थे, वे इतिहास में खुलकर उसका नाम कैसे लिख सकते थे? पढ़े-लिखे लोग भी उच्च श्रेणी के ही थे और इतिहास रचने वाले भी वही थे।

उन्होंने प्रत्येक स्थान पर कृष्ण के साथ मीरा का नाम देकर सद्गुरु रविदास जी को मीरा के गुरु होने के प्रमाणों को अस्पष्टता का रूप देने की पूर्ण कोशिश की जिसके कारण कुछ विद्वान यह बात मानने को तैयार ही नहीं कि मीरा के गुरु सद्गुरु रविदास महाराज जी थे।

लेकिन मीरा की अपनी पदावली में ही उसने सद्गुरु रविदास जी को गुरु धारण करने पर लिखा है :-

गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे धुर से कलम भिड़ी।
सतिगुर सैन दई अब आके जोत में जोत रली।

(मीराबाई की शब्दावली पृ. सं. 444)

अपने परिवार के नाम को कलंकित करने के दोष का उत्तर देती हुई मीरां कहती है कि मुझे सद्गुरु रविदास गुरु मिलने पर प्रभु की प्राप्ति हो गई है:-

नहिं मैं पीहर सासरे नहिं पियाजी, री साथ।
मीरा ने गोबिंद मिल्या जी गुरु मिलिया रैदास।

(मीरा पदावली पृ 201)

केवल सद्गुरु रविदास की कृपा से ही मीरा को आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति हो सकी।

खोजन फिरूँ भेद वा घर को, कोई न कर बखानी।
रैदास संत मिले मोहि, सतिगुरु दीन्हीं सुर सहदानी।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तबी मोरी पीर बुझानीय ।

(मीरा बृहत्पदावली पृ 207)

मीरा सदैव अपने सद्गुरु की याद में ही खोई रहती है और दुनिया में आकर उन्हीं के चरणों में अपना जीवन बिताने की इच्छा करती है। वह अपनी विनय भावना से गुरु को प्रार्थना करती है कि वह उसे इस संसार रूपी महासागर से पार कर अपनी शरण में ले जाए ताकि वह अपना तन-मन गुरु-चरणों में समर्पित कर दें :-

गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्हीं ज्ञान की गुटकी।
परम गुरां की सरन में रहस्या परणाम करा लुटकी ।।

इतना ही नहीं मीरा की पदावली पर संत मत का गहरा प्रभाव स्पष्ट नज़र आता है, उसकी पदावली में निर्गुण प्रभु और गुरु की बात कही गई है। उसकी पदावली में प्रयोग 'योगी' शब्द भी संत-मत का प्रभाव है। मीरा ने स्वयं कहा है कि उसने अपने प्रभु का दर्शन संतों की संगति में ही पाया है। मीरा ने मानव को बताया है कि सत्संग के रस को ग्रहण करने, उसे चखने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। जिससे सिद्ध होता है कि संतमत के संत कवि और श्रेष्ठ भक्तिकालीन महापुरुष सद्गुरु रविदास ही मीरा के गुरु थे।

गंगा को दर्शन

गोतम नारि उमापति स्वामी ।
सीसु धरनि सहस भग गांमी ।।

उत्तरी भारत में बहने वाली पवित्र नदी गंगा पूरे भारत में पूजनीय है। गंगा जल में स्नान कर लोग अपने तन-मन को पवित्र करते हैं। यही कारण है कि समय-समय पर अनेक मेले एवं त्यौहार इस गंगा के तटों पर मनाए जाते हैं। दूर-दूर से आए लोग यहाँ दान-पुण्य करते और माँ के चरणों में शीश झुकाकर अपनी गलतियों के लिए क्षमा माँगते हैं। अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिए प्रार्थना करते हैं। बहुत सारे तीर्थ-स्थान इसके किनारे पर बने हुए हैं। इसी गंगा की महिमा आदिकाल से होती चली आ रही है। कई पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाएँ इसके जीवन के साथ जुड़ी हुई हैं। प्रसिद्ध पौराणिक कथा के अनुसार राजा भगीरथ ने कई वर्ष कठोर तपस्या की जिससे उसने अपने पूर्वजों के गुनाहों को तो दूर किया ही, साथ में गंगा माता को भी मृत्यु लोक में लाने का वरदान पाया। गंगा ने बंजर भूमि को आबाद किया। परहित के कारण ही इसने स्वर्ग त्याग कर पृथ्वीलोक का वरण किया था।

एक अन्य भागवत कथा के अनुसार आठ वसुओं के उपकार हेतु और महाभिष्क द्वारा की गई भूल का कारण स्वयं को मानकर अपने पश्चाताप हेतु गंगा ने स्वर्ग का त्याग किया और मृत्युलोक में आकर शांतनु (महाभिष्क) को पति के रूप में स्वीकार किया। कहते हैं कि ब्रह्मलोक में ब्रह्मा की अध्यक्षता में एक सभा बुलाई गई जिसमें पृथ्वी विशेष अतिथि के रूप में देवलोक पधारी। इसके अतिरिक्त अग्नि, इन्द्र और गंगा भी उस सभा में उपस्थित थे। महान् और तेजस्वी राजा महाभिष्क भी उस सभा का एक सदस्य था। सभा-आयोजन का उद्देश्य धरती पर फैले कुसंस्कारों के अन्धकार को मिटाना था।

सभी देवताओं के चिन्तन के बाद यह निश्चित किया गया कि केवल महाभिष्क ही ऐसा पुरुष है जिसे पृथ्वी के उद्धार हेतु मृत्युलोक में भेजा जा सकता है। इसी उद्दश्य से ब्रह्मा ने लीला रचाई और तेज हवा से गंगा की साड़ी का पल्लु सरका दिया जिस कारण महाभिष्क ने गंगा के अनुपम सौंदर्य के दर्शन कर लिए। देवलोक के नियमों के अनुसार गंगा के सौंदर्य के दर्शन करने पर पाबंदी लगाई हुई थी क्योंकि उसके दिव्य-दर्शनों की शक्ति को सभी देवता सहन भी नहीं कर सकते थे। इसीलिए तेजस्वी महाभिष्क पर यह आरोप लगाया कि उसने देवलोक के नियमों की अवज्ञा कर गंगा के रूप-सौंदर्य के दर्शन किए हैं।

अतः उसे दण्ड भुगतना पड़ेगा। दण्ड भुगतने के लिए महाभिष्क को पृथ्वीलोक में भेजा गया। उधर गंगा को लगा कि मेरे कारण महाभिष्क को सभा में दण्डित होना पड़ा है और दूसरा गंगा सोचती है कि यदि किसी ने इस सौंदर्य को देखना ही नहीं था तो फिर ऐसी सुंदरता देने का क्या लाभ? इन्हीं प्रश्नों के घेरे में डूबी शाश्वत सौंदर्य की देवी गंगा ने यह निर्णय ले लिया कि यदि महाभिष्क ने अपराध किया है तो मैं भी दण्ड की भागी हूँ।

पश्चाताप के लिए मुझे भी धरती पर जाना होगा। तभी इतना बड़ा त्याग कर वह धरती पर आई और महाभिष्क जो शांतनु बन राजा प्रतीप के घर पैदा हुए थे उसके आकर्षण का केन्द्र बनी और अंत में शांतनु के साथ शादी हो गई। इतना महान त्याग केवल एक नारी ही कर सकती है। गंगा संपूर्ण नारी जाति की प्रतीक है और अपने गुणों एवं रूप सौंदर्य से नारी का आदर्श प्रस्तुत करती है।

इसी पवित्रता की देवी पर बारह साल के बाद कुंभ का मेला लगता है। भारत में पन्द्रहवीं शताब्दी मध्यकाल में जब संत कवियों एवं महापुरुषों द्वारा भक्ति-लहर चलाई गई तो उस समय भी कुंभ का मेला आया। दूर-दूर से लोग, सन्त महात्मा-जन गंगा माता के दर्शनों के लिए गए। उन दिनों

सद्गुरु रविदास महाराज रानी झालां बाई के पास चितौड़गढ़ गए हुए थे। कुंभ का मेला समाप्त हुआ। सभी लोग अपने घरों को वापस लौट गए। पर गंगा मैया उदास थी। एक सोच लगी हुई थी कि मेला बहुत भरा हुआ है। दूर-दूर से भक्तजन कुंभ के मेले में उपस्थित हुए हैं।

सभी ने मेरे दर्शन किए, सभी ने मुझमें स्नान करके अपने पापों की मैल धोई लेकिन जिनके दर्शनों की मैं प्यासी थी, जिनके चरण कमलों के स्पर्श का मुझे इन्तजार था, वे नहीं आए। सद्गुरु रविदास महाराज जी के न आने का क्या कारण हो सकता है? कहीं मुझ से कोई भूल तो नहीं हो गई? क्या मेरे से कोई नाराज़गी तो नहीं है? सोचा, मैं स्वयं सद्गुरु के दर्शनों के लिए जाऊँगी। अपने दर्शनों की प्यास बुझाऊँगी और न आने का कारण भी पूछेंगी। गंगा माता ने सद्गुरु के पास जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

अब कुछ के मन में यह संदेह पैदा हो जाता है कि गंगा तो एक नदी है, वह सद्गुरु के पास कैसे जा सकती है?

गुरु प्यारी साध संगत जीओ ! जैसा कि ऊपर भी आप को संकेत दिए जा चुके हैं कि गंगा केवल बहता हुआ नीर ही नहीं बल्कि यह शक्ति देवी भी है।

भागवत कथाओं, पुराणों एवं उपनिषदों से यह पता चलता है कि गंगा ने मानव कल्याण हेतु कई रूप धारण किए। पृथ्वी के लोगों का उपकार किया, सूखी-रेतीली धरती को सींचकर स्वर्णिम पुष्प खिलाए, बंध्या धरती को उपजाऊ बनाया। मां बन कर आठ वसुओं का कल्याण किया। लोक-मर्यादाओं को भंग करके अपने वचन को निभाया। उस दैवी शक्ति के अनेक रूप हैं, जो वन्दनीय हैं। वह भी शक्ति का ही रूप थी जिस ने चण्डी का रूप धारण कर राक्षसों का संहार किया था। इसी शक्ति को सिक्ख धर्म में अरदास से पहले भगउती नाम से पुकारा जाता है।

नारी जाति का सम्मान है गंगा और पुरूष का बल है :-

नारी शक्ति पुरुष का बल
जीवन का बनती सम्बल
उसकी पूजा न कौन करे?

नारी के इन्हीं अनन्त रूपों के अद्भुत प्रभावों एवं अपार शक्ति को देखते हुए ही कामायानीकार के शब्दों में यही स्वीकार करना पड़ता है :-

हे अनन्तः रमणी कौण तुम?
यह मैं कैसे कह सकता हूँ।

स्वर्गलोक का त्याग करके आई ममतामयी गंगा का एक महामानव एवं उच्चकोटि के सन्त सद्गुरु रविदास महाराज जी के पास चलकर आना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भागवत कथा के अनुसार जिस महाभिष्क की खातिर गंगा ने देवलोक का त्याग कर मृत्युलोक के शांतनु (महाभिष्क) का वरण किया था, वह भी महान तेजस्वी और अलौकिक गुणों से परिपूर्ण था, तभी उसने गंगा के अद्धितीय शाश्वत सौंदर्य के दर्शन किए थे। सामान्य देवता भी दिव्य सौंदर्य के प्रकाश को सहन करने की शक्ति नहीं रखता था।

इसी तरह सद्गुरु महाराज जी भगवान के अवतार थे, अथाह शक्ति के मालिक एवं ब्रह्मज्ञानी थे। आप की निःस्वार्थ भक्ति में इतनी शक्ति थी कि आपके नूरी स्वरूप के दर्शन मात्र से जीव का कल्याण हो जाता था। तभी तो गंगा माता भी सद्गुरु के दर्शनों के लिए काशी (वाराणसी) पहुँची। जब गंगा महाराज जी के पास आश्रम में पहुँची तो सद्गुरु जी ने उसे आसन दिया, सस्नेह बिठाया और उदास चेहरे को पढ़ते ही बोले-'माँ! आज आप ने यहाँ कैसे दर्शन दिए? क्या बात है? आप मुझे ही बुला लेते।' गंगा बोली-'महाराज ! बुलाया तो था पर न जाने कौन सी भूल के कारण आप जी के चरण-कमलों की धूल मुझे न मिल सकी।

कुंभ के मेले में इतनी भीड़ इकट्ठी हुई लेकिन आप को न पाकर मन बेचैन हो गया। इसीलिए आप के दर्शन करने और क्षमा-याचना करने चली आई हूँ। सद्गुरु मुस्कुराए और गंगा जी से पूछने लगे-'माता! जब इतने लोग कुंभ के मेले में पहुँचे, अनेक ऋषि-मुनियों ने आपके दर्शन किए, स्नान किया, यदि मैं नहीं भी आ सका तो क्या हुआ? गंगा माता ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया- 'मेरे मालिक, मेले में जितने भी लोग आए, अपने पापों की मैल धोकर चले गए। किसी ने कोई मुराद मांगी, किसी ने कोई अन्य इच्छा लेकर स्नान किया।

कुछ लोग अनेक पदार्थ मुझ में बहाकर चले गए। उन्होंने अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु पूजा-अर्चना की लेकिन मुझे पवित्र करने वाला कोई नहीं आया। मैं इतने पापों के बोझ को कैसे उठा सकती हूँ। महाराज जी, मैं तो तभी पवित्र हो सकती हूँ जब आप जैसी महान आत्माओं के दर्शन और चरण-धूल मुझे मिले, जिससे मैं लोगों का कल्याण करती रहूँ। केवल आप की निःस्वार्थ भक्ति में ही इतनी शक्ति है।

इसीलिए मुझे आपकी शरण में आना पड़ा। मुझे कोई सन्त महापुरुष नहीं मिला जो बिना किसी लोभ व स्वार्थ के मेले में आया हो। महाराज, मुझ पर कृपा कीजिए। जल्दी-जल्दी अपने चरणों का स्पर्श करवा कर मुझ पर उपकार कीजिए। मुझे भी पापों से मुक्त करो।

जब ऐसे महाराज रविदास जी और गंगा के बीच में प्रभु प्रेम का प्रसंग चल रहा था, शाश्वत सत्य की चर्चा हो रही थी तो एक चुगलखोर ने उन्हें देख लिया। उसने सोचा कि कहाँ यह एक फकीर और कहाँ यह रूप-सौंदर्य की मल्लिका, कीमती आभूषणों से लदी हुई यह नारी। उस विकारी ने सोचा कि यदि इसकी खबर विकारी राजा विजय सिंह को दे दी जाए तो मुँह मांगा इनाम मिल सकता है। उसने राजा विजय सिंह को सद्गुरु रविदास और सुंदर औरत गंगा की बात सुनाई। बातों को इतना बढ़ा-चढ़ा कर सुनाया कि राजा का विकार उजागर हो गया। उसके विवेक का दीपक बुझ गया और माया सिर चढ़कर बोलने लगी। गीता में भी कहा गया है कि साँप का जहर तो व्यक्ति को तब चढता है जब साँप उसे काटता है लेकिन माया का ऐसा ज़हर है जो कोसों की दूरी पर से ही व्यक्ति पर अपना प्रभाव छोड़ देता है।

तभी तो सद्गुरु कबीर महाराज जी ने भी विकारी लोगों से दूर रहने के लिए कहा है: -

कबीरा संगत करीए साघ की। जो अंत करै निरबाह ।।
साकत संग न कीजीजै। जातै होइ बिनाहु ।।

उस विकारी की चिकनी चुपड़ी बातों को सुनकर राजा को काम (माया) का जहर चढ़ गया और उस सुंदर औरत को पाने का सपना देखने लगा। विकारी राजा को अब अन्य कुछ भी नहीं सूझ रहा था। सद्गुरु रविदास महाराज जी ने भी तभी हमें असन्तों से दूर रहने के लिए कहा थाः-

अउर इक मागउ भगति चिंतामणि । जणी लखवहु असंत पापीसणि ।।३।।

(पृष्ठ संख्या 486)

अतः हमें विकार भरी बातें न सुननी चाहिए और न ही करनी चाहिए। मन सभी विकारों का जननी स्रोत है और इस मन को हमें भगवान के नाम की ओर जोड़ कर रखना चाहिए क्योंकि यदि एक बार इन विकारों का जहर व्यक्ति में फैल जाए तो इसे कोई मंत्र भी दूर नहीं कर सकता।

जिस भी व्यक्ति ने इन काम-क्रोध आदि मायावी शक्तियों का सहारा लिया, वे उसी में डूब गए, उनका सर्वनाश हो गया। लोक-परलोक में वे निन्दा के पात्र बने। यही हाल राजा विजय सिंह का हुआ। उस चुगलखोर के मुख से सुंदर औरत के बारे में सुनकर राजा ने उसी समय अपने मंत्री को बुलाया और आदेश दे दिया- "जाओ, उस फकीर और उस औरत को पकड़कर मेरे सामने लेकर आओ।"

राजा का आदेश पाकर राजा का वज़ीर सद्गुरु रविदास जी के पास काशी जा पहुँचा। आश्रम में पहुँच कर जब उन्होंने सद्गुरु रविदास और गंगा के दर्शन किए तो उनके अवतारी नूर को देखकर वजीर को आत्मिक संतोष प्राप्त हुआ। उसे आश्चर्य हो रहा था कि राजा इन इलाही शक्तियों को क्या समझ बैठा है।

उसकी नादानी एवं मूर्खता पर उसे हँसी आ रही थी लेकिन राजा का आदेश तो उसे मानना ही था। वज़ीर ने महाराज जी को विनती की कि आप इस औरत को साथ लेकर राजा के पास हाज़िर हो जाएं। महाराज जी बोले-'मंत्री जी! जिसे आप सामान्य नारी समझ रहे हो, यह तो दिव्य शक्ति गंगा है। राजा ने इसे क्यों बुलाया है। इससे राजा को क्या काम हो सकता है? मंत्री ने कहा सद्गुरु जी, अगर यह गंगा माता हैं तो फिर आप ही मेरे साथ चलिए। राजा को समझा दीजिए।

सद्गुरु जी मंत्री के साथ राज-दरबार में चले गए। अकेले सद्गुरु को देख राजा लाल-पीला हो गया और क्रोधित स्वर में बोला-'अपने साथ उस स्त्री को क्यों नहीं लाए जो तुम्हारे पास थी? उसे कहाँ छोड़ आए हो?

सद्गुरु जी बोले-'राजा, जिसे आप नारी समझ रहे हो वह कोई साधारण नारी नहीं, बल्कि देव माता गंगा है। स्त्री को फकीर के साथ क्या काम? कोई औरत हमारे पास क्यों आएगी? जिस औरत की बात तुम कर रहे हो वह तो स्वयं गंगा है, दैवी शक्ति है, कल्याणकारी है, त्याग की मूर्ति है। उससे आप को क्या काम है? वह तो जगत-माता है।

वह माता तो मुझे मिलने आई थी। राजा की मत मारी हुई थी। वह महाराज की बातों को कैसे समझ पाता। कहने लगा- 'उस सुंदर औरत को मैं अपने महलों की रानी बनाना चाहता हूँ। उससे शादी करूँगा। 'मगर राजा! ऐसा नामुमकिन है। वह तो जगत जननी है, पूजनीय है, शाश्वत सौंदर्य की मूर्ति है। हम तो संसारी जीव हैं। आपका और उस अलौकिक शक्ति का तो कोई मेल ही नहीं। परंतु राजा को भले-बुरे की अब कोई पहचान नहीं रही। कहने लगा यदि गंगा जगत माता है तो हम भी जगत-पिता है। पूरी प्रजा मेरे आदेश से ही चलती है।

राजा की इस अहम् भरी बात को सुनकर महाराज जी कहने लगे कि हाँ, राजा! जगत पिता वह होता है जो अपनी प्रजा के दुख-सुख को अपना दुख-सुख समझता है, जो प्रजा की खातिर अपने सारे सुख न्यौछावर कर देता है, परंतु वह राजा जो प्रजा पर जुल्म करे, अपनी मनमानी करे, वह तो जगत पिता नहीं बल्कि दुराचारी राजा होगा। जो राजा अपनी प्रजा पर अन्याय करे, उन पर अपनी ही इच्छा थोपे, वह जगत पिता कैसे हो सकता है? क्या कोई अपनी संतान का भी बुरा चाहता है? सद्गुरु की ऐसी निर्भीकता पूर्ण बातें सुनकर राजा अधिक गुस्से में आ गया और मंत्रियों को बुलाकर कहने लगा कि इस फकीर को पकड़ कर कैदखाने में बंद कर दो, बाहर न निकल पाए।

सद्गुरु जी को जेल में बंद करके राजा अपने मंत्री को साथ लेकर काशी के लिए रवाना हो गया। बड़ी तेज़ी से जब वह रविदास महाराज जी के आश्रम में पहुँचा तो वहां गंगा माता के पास सद्गुरु जी को देखकर हैरान रह जाता है। सोचने लगा कि इसे तो हम बन्द करके आए थे लेकिन यह हमारे से पहले यहां कैसे पहुँच गया? शायद इसने जादू-मंत्रों द्वारा अपना रूप बदल लिया हो लेकिन हम भी अब खाली हाथ नहीं जाएंगे। राजा ने मंत्री को कहा कि इस स्त्री को उठाओ और रथ पर बिठा दो। गंगा मां ने देखा कि राजा की अक्ल ठिकाने नहीं है।

उसने राजा को कहा कि मुझे थोड़ी देर सोचने का समय दो। गंगा ने सद्‌गुरु जी से परामर्श किया कि अब इस राजा को सबक सिखाना ही पड़ेगा। यह ऐसे मानने वाला नहीं है। इस का अंत नज़दीक आ चुका है। महाराज जी कहने लगे कि हे गंगा माता! इसे सुधरने का एक और मौका दो, शायद समझ जाएगा। सोच विचार कर गंगा माता ने राजा विजय सिंह को कहा कि राजा! मैं आप के साथ शादी करने के लिए तैयार हूँ, तुम जबरदस्ती मत करो। ऐसा करना आप को शोभा नहीं देता। आप जाओ और बारात ले कर आओ। धूमधाम से शादी रचाओ, फिर मुझे ब्याह कर ले जाओ। फिर सद्‌गुरु जी ने कहा कि राजा! एक बात का ध्यान अवश्य रखना कि बाराती उसी को बनाना जो तेरी इस बात पर सहमत होंगे।'

राजा प्रसन्नचित वापस लौट गया और वहाँ जाकर उसने सभी को शादी का समाचार सुनाया। सभी को आदेश दे दिया गया कि शादी की तैयारी शुरू कर दें। विशेष बैंड-बाजे एवं शहनाइयों का प्रबंध किया जाए। धूमधाम से शादी होगी। नाचेंगे, गाएंगे। समय आने पर राजा अपने संगी-साथियों के साथ गंगा को ब्याहने चल पड़ा। ज्ञानी एवं विवेकी लोगों ने मूर्ख राजा का साथ न दिया। वे जानते थे कि राजा होश में नहीं है, उसकी बुद्‌धि भ्रष्ट हो चुकी है। ज्ञानवान लोगों ने उसे समझाने की कोशिश की लेकिन राजा न माना। जब कोई चीज़ नाश होने वाली होती है तो उसे किसी की भली बात भी बुरी नजर आने लगती है। अति और खुदा का वैर होता है।

राजा अपनी बुराई की सीमा पार कर चुका था। उसे केवल शादी का ही जनून था। लंका का राजा रावण जो प्रगाढ़ विद्‌वान पंडित था, महान तपस्वी था, योद्‌धा था लेकिन उसका एक ही अवगुण 'अहम्' उसे ले डूबा, उसका पूरा वंश एवं सोने की लंका नगरी जल कर राख हो गई। संसार में ऐसे बड़े-बड़े महापुरूष पैदा हुए हैं जिनके एक ही विकार के कारण उन्हें अपने महान गुणों से हाथ धोना पड़ा। राजा विजय सिंह तो ठहरा ही विकारी स्वभाव का। वह अपने कुछ साथियों समेत काशी के लिए चल पड़ा। शहनाई बजने लगी। नाच-गानों के साथ बारात बनारस में पहुँच गई। सभी बाराती मस्ती में झूम रहे थे।

राजा ने मंत्री के हाथ संदेश भेज दिया कि बारात द्‌वार पर पहुँच चुकी है, गंगा को कह दो कि आप भी शादी की तैयारी कीजिए। जब राजा के पहुँच जाने का संदेश मिला तो सद्‌गुरु रविदास महाराज गंगा माता को पूछने लगे कि अब उन्हें क्या जबाब देना है?

गंगा माँ बोली-सद्‌गुरु जी! चिन्ता मत कीजिए, अब राजा के बचने का कोई आसार नजर नहीं आ रहा। उसका काल उसे बुला रहा है। उसके पापों का घड़ा अब भर चुका है। अब यह फूटने ही वाला है। राजा की जीवन रूपी नौका पापों से इतनी भारी हो चुकी है कि अब इसे डूबने से कोई नहीं बचा सकता। वह इस संसार रूपी भवसागर में डूब जाएगा। गंगा माता ने उसी मंत्री के हाथ संदेश भेज दिया कि हमारी ओर से शादी के लिए इनकार है। यदि फिर भी राजा शादी करना चाहता है तो उसे युद्‌ध करना पड़ेगा। अगर युद्‌ध में जीत जाएगा तो ही गंगा को ले जा सकता है वरन् यह शादी नहीं हो सकती।

जब यह सूचना राजा के पास पहुँची तो राजा आग बबूला हो गया। कहने लगा कि एक फकीर की यह हिम्मत कि वह राजा के साथ युद्ध करेगा।

राजा ने उसी समय अपनी फौज को बुलाया। साथ ही आदेश दे दिया कि केवल गंगा को बचाकर बाकी सब कुछ जला कर राख कर दो। जान-माल सभी को नष्ट कर डालो। राजा के मंत्री और सेना युद्ध की तैयारी के लिए वापस चले गए। उधर सद्गुरु रविदास महाराज और गंगा माँ ने भगवान से प्रार्थना की कि प्रभु! हमारी लाज रखो। हमारे पास तो केवल आपका ही सहारा है, अन्य कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं हैं। इस मूर्ख राजा को ऐसा सबक सिखाओ कि आने वाली पीढ़ियाँ भी याद रखें। भगवान ने अपने भक्तों की अरदास सुनी और देवता-गण को पता लगाने के लिए भेजा। कहा - ऐसा राजा कौन सा है जिसे अपनी मौत का डर नहीं है, जो स्वर्ग की देवी गंगा को परेशान कर रहा है? इन्द्र देवता को वहाँ का कार्यभार सौंप दिया गया। इन्द्र देव की कृपा से मूसलाधार मेघ बरसने लगे। बिजली चमकने लगी। आकाश में काली घनघोर घटा छा गई। आकाश में बगुले ऐसे उड़ने लगे मानो युद्ध के मैदान से सैनिक झण्डे लेकर भाग रहे हो। बिजली ऐसे दमकने लगी मानो शूरवीरों के हाथों में शमशीर हो। बादलों की गरज तोपों का काम कर रही थी। सारी जमीन-आसमान मानो युद्ध का मैदान बन गया हो। राजा अभी युद्ध की तैयारी ही कर रहा था कि मूसलधार वर्षा होने लगी। जो लोग भाग कर सद्गुरु रविदास महाराज जी के चरणों में आ गए, उनके प्राण बच गए और जो यह सोच रहे थे कि हम गंगा को जीतकर लेकर ही जाएंगे, रविदास को बर्बाद कर देंगे, वे सभी उस वर्षा की लपेट में आ गए और सदा के लिए मिट गए। उनकी सारी सामग्री पानी में बह गई। उधर माता गंगा ने भी अपना रूप बदला और गंगा नदी बनकर राजा विजय सिंह को उसके परिवार समेत अपने साथ बहाकर ले गई। अब राजा सोच रहा था कि सचमुच यह गंगा माता ही थी जिसे मैं समझ नहीं पाया। गंगा ही रविदास महाराज जी के दर्शन करने काशी में आई थी। राजा अपने पूरे कुल का नाश होता देख रहा था। अपने कर्मों को कोस रहा था। पर समय बहुत बलवान होता है। एक बार हाथ से निकल जाए तो वापस नहीं आता। समय और लहरें किसी की प्रतीक्षा नहीं करती। अतः हमें इन विकारों से सदा दूर रहना चाहिए। न बुरा देखो, न बुरा बोलो और न ही ऐसे विचार मन में लाओ जिससे आपकी सोच पर बुरा प्रभाव पड़े। इन विकारों ने तो बड़े-बड़े अवतारों को भी नष्ट कर दिया। इस समय सद्गुरु रविदास महाराज जी ने इस शबद का उच्चारण किया था :-

नाथ कछूअ न जानउ ।
मनु माइआ कै हाथि बिकानउ ।।१।। रहाउ ।।
तुम कहीअत हौ जगत गुर सुआमी।
हम कहीअत कलिजुग के कामी ।।१।।
इन पंचन मेरो मनु जु बिगारिओ ।
पलु पलु हरि जी ते अंतरु पारिओ ।।२।।
जत देखउ तत दुख की रासी।

अजौ न पत्याइ निगम भए साखी ।।३।।
गोतम नारि उमापति स्वामी।
सीसु धरनि सहस भग गांमी ।।४।।
इन दूतन खलु बधु करि मारिओ ।
बडो निलाजु अजहू नही हारिओ ।।५।।
कहि रविदास कहा कैसे कीजै।
बिनु रघुनाथ सरनि का की लीजै ।। ६ । ।१ ।।

जब कछु पावै तब गरबु करतु है। माइआ गई तब रोवनु लगतु है।।

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी की बढ़ती हुई ख्याति को देखकर सामान्य-जन तो प्रसन्न हुआ लेकिन जिन लोगों के आडम्बरों का पर्दाफाश हुआ, वे दुखी रहने लगे। दुनिया का दस्तूर है कि किसी के दुख को देख कर दुखी होने वाले व्यक्ति तो बहुत कम मिलते हैं लेकिन जो लोग किसी की उन्नति एवं सुख को देखकर दुखी होते हैं, ऐसे लोगों की कमी नहीं।

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी की बार-बार शिकायत करने पर भी जब जाति अभिमानियों की कोई पेश न गई तो उन्होंने सोचा कि अब हम भरी सभा में सद्‌गुरु जी को अपमानित करेंगे। उनकी सोच को अमली जामा तब मिला जब राजा ने सद्‌गुरु रविदास महाराज जी को बुलाकर महान यज्ञ करवाने का कार्यक्रम बनाया। अभिमानी पण्डितों ने सोचा कि इस यज्ञ में क्यों न एक अनुभवी बाजीगर को बुलाया जाए और जब यह भरे दरबार में बाजियाँ डालेगा तो सभी उसकी प्रशंसा हेतु उसे कुछ न कुछ धन देंगे, लेकिन सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के पास जब भेंट करने के लिए कुछ नहीं होगा तो भरी सभा में आप जी को अपमानित होना पड़ेगा। इससे साँप भी मर जाएगा और लाठी भी बच जाएगी। हम राजा की नज़रों में भी नहीं आएंगे और हमारा काम भी हो जाएगा। इससे सद्‌गुरु रविदास की महिमा भी कम जो जाएगी।

निश्चित समय आ गया और राजा के दरबार में बहुत बड़ा सत्संग किया गया। दूर-दूर से संगत इस भण्डारे में शामिल हुई। सद्‌गुरु की महिमा भी चारों ओर फैली हुई थी जिससे सभी लोग वहाँ दर्शन करने के लिए पहुँचे। चारों तरफ चहल-पहल थी। लोग खुश थे।

सद्‌गुरु जी भी वहाँ पहुँच गए। दरबार सज गया। सद्‌गुरु जी को सुसज्जित सिंहासन पर बिठा दिया गया। चरणों में राजा भी बैठ गया। सद्‌गुरु जी ने अपने प्रवचनों द्‌वारा अमृत वर्षा की। संगत बहुत प्रसन्न हुई। सद्‌गुरु जी की जय-जयकार होने लगी। सब तरफ खुशी का माहौल बन गया। इतने में एक बाजीगर मंच पर पहुँच गया। गुरु जी को हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि महाराज !

मैं एक बाजीगर हूँ और मैं अपनी कला का प्रदर्शन सभी के समक्ष करना चाहता हूँ। अगर आप मुझे आज्ञा प्रदान करें तो मैं अपनी बाज़ियों से सभी को मंत्रमुग्ध् कर दूँगा। गुरु जी ने कहा कि हाँ, आप को इजाजत है। बाजीगर खुश हो गया और उससे भी ज्यादा वे पण्डित खुश हुए जिन्होंने इस बाजीगर को आगे किया था और यह भी कहा था कि हम आप को मुँह मांगी राशि देंगे।

बाजीगर ने अपनी बाजियां डाली। भिन्न-भिन्न प्रकार की बाज़ियाँ लगा कर उसने सभी को खुश करने की कोशिश की। बाजीगर अपनी कला में निपुण था। उसकी कला को सराहा गया। राजा ने उसके प्रदर्शन पर प्रसन्न होकर उसे कई मुद्राएं दी। बैठी संगत ने भी यथाशक्ति धन देकर बाजीगर को उत्साहित किया।

सद्गुरु रविदास महाराज भी यह सारा दृश्य देख रहे थे। आप को भी यह सब अच्छा लगा। सद्गुरु जी ने भी अपना आसन उठाया और कुछ मोहरें निकाली और बाजीगर को दे दी। बाजीगर को काफी धन मिल गया। वह बहुत खुश था। अभिमानी पण्डितों की चाल न चली। वे तो सारा कुछ देखकर और भी स्तब्ध रह गए। पण्डितों ने सोचा कुछ और था और हुआ कुछ और ही ।

उनकी सोच थी कि सद्गुरु रविदास जी जब बाजीगर को धन नहीं दे सकेंगे तो बाजीगर उनको उलटी-सीधी बातें सुनाएगा। उनसे कुछ धन की मांग करेगा और भरी सभा में सद्गुरु के पास बाजीगर को देने के लिए कुछ नहीं होगा। पर वे क्या जानें कि जिसके पास प्रभु के नाम का धन होता है, उसे अन्य धन स्वयं ही मिल जाते है। जो भगवान का हो जाता है, लोग उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। सद्गुरु रविदास महाराज जी ने जब जाति अभिमानियों के अभिमान को चूर कर दिया तो वे पण्डित तो फिर अपने आप को छिपाने लगे, कोसने लगे। बाजीगर मालोमाल हो गया।

उसे धन और प्रशंसा दोनों चीजे प्राप्त हो गई और वह सद्गुरु के गीत गाने लगा। सद्गुरु रविदास महाराज जी की भक्ति और शक्ति से वह गद्गद हो गया और खुशी से गाने लगा। उस समय सद्गुरु जी ने इस शब्द का उच्चारण किया

माटी को पुतरा कैसे नचतु है। देखै देखै सुनै बोलै दउरिओ फिरतु है।।१ । ।रहाउ ।।
जब कछु पावै तब गरबु करतु है। माइआ गई तब रोवनु लगतु है।।१।।
मन बच क्रम रस कसहि लुभाना। बिनसि गइआ जाइ कहूं समाना।।२।।
कहि रविदास बाजी जगु भाई। बाजीगर सउ मोहि प्रीति बनि आई ।। ३।।६ ।।

सद्गुरु जी फरमाते हैं कि जब इस मिट्टी के पुतले को धन की जरूरत होती है तो उसे पाने के लिए यह क्या-क्या नाच करता है। कई प्रकार के खेल खेलता है। जब इसे माया मिल जाती है तो फिर यह गर्व करने लग जाता है। उसे धन का अभिमान हो जाता है। लेकिन धन किसी के पास भी अधिक देर तक नहीं टिकता और जब यह धन मानव से खो जाता है, तो वह फिर से रोने लगता है। सद्गुरु जी की ऐसी वाणी सुनकर पूरी संगत बहुत प्रभावित हुई। सभी लोग आप जी की महिमा गाने लगे और बहुत से लोग आप जी के श्रद्धालु हो गए।

सद्गुरु रविदास जी और राजा बैन

जब सद्गुरु रविदास महाराज जी की महिमा एवं पूर्णता राजघरानों के शाही महलों में भी प्रवेश कर गई और उन राजपूत रानियों के मनों में भी, जिन्हें उस समय घर की चाहर दीवारी से बाहर निकलने का भी अधिकार नहीं था। उन्हें तो केवल महलों के अन्दर राजघराने की शान के रूप में रखा जाता था। जब रानी झालां बाई ने सच्चे सद्गुरु की तलाश कर सद्गुरु रविदास जी से राम-नाम रूपी अमूल्य रत्न की प्राप्ति कर ली तो उसके मुँह से गुरु जी की महिमा सुन कर रानी मीरा भी गुरु जी के पास जा पहुँची और गुरु दीक्षा प्राप्त कर गुरु चरणों से जुड़ गई।

अब स्वयं को उच्च कहने वाले मीरा के सगे सम्बन्धियों एवं रिश्तेदारों ने मीरा का विरोध किया, उसे अनेक यातनाएं दीं, लेकिन सद्गुरु की अपार कृपा एवं मीरा की सच्ची गुरु भक्ति के आगे उनकी एक भी न चली। पर मध्यकालीन के स्वर्ण वर्ग के वे लोग जो अपनी झूठी आन और शान से लोगों पर हकूमत करते थे, उनका शोषण करते थे, वे लोग भला सद्गुरु रविदास जी को मीरा का गुरु कैसे स्वीकार कर सकते थे? आसानी से इस बात को हजम करना उनके लिए सम्भव नहीं था। दूसरा, यदि वे यह सभी कुछ सहन करने की कोशिश भी करते तो राज घराने के पण्डित उन्हें कुल की मर्यादा की याद दिला देते। वे कहते कि मीरा ने तो हमारी विद्वता को ठुकरा दिया है। हमें छोड़ कर निम्नवर्गीय रविदास जी के चरणों में शीश झुकाकर हमें कहीं का नहीं छोड़ा और इस प्रकार की बातों से भड़कने वाला एक मीरा का नज़दीकी संबंधी (फूफा) भी था।

जब उसे पता चला कि मीरा ने सद्गुरु रविदास जी को अपना गुरु धारण कर लिया है और उन्हीं के गुणगान में लीन है, दीन-दुनिया से बेखबर अपने सद्गुरु के प्यार में ही डूबी रहती है तो पहले तो वह क्रोधित हुआ, लेकिन जब सीधी अँगुलि से घी नहीं निकला तो टेढ़ी चाल चलने लगा, जिससे सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। प्यार से मीरा के गुरु को मारने का उपाय सोचने लगा। वह जानता था कि बचपन से प्रभु-भक्ति में रंगी मीरा मेरे कहने पर अपने गुरु को नहीं छोड़ेगी।

इसीलिए राजा बैन सिंह जो उस समय खुराली रियासत का राजा था, उसने मीरा को मिलने की चाह प्रकट की और यह भी कहा कि बेटा! अपने गुरु के दर्शन भी करवा देना। हमारी ओर से प्रार्थना कर सद्गुरु रविदास जी को हमारे राजभवन में भी ले आना। हम भी पूर्ण सद्गुरु के दर्शन कर धन्य हो जाएंगे।

श्रद्धा, प्रेम एवं भक्ति के रंग में रंगा कोई भक्त यह नहीं सोचता कि कोई उसका बुरा चाहने वाला भी होगा। उसे तो सभी में ईश्वर के दर्शन होते हैं। सद्गुरु के अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता।

वह तो सभी में एक ज्योति को ही पहचानता है, उसे कोई दुश्मन नजर नहीं आता, ईर्ष्या, द्वेष उस के मन में नहीं होता। वह तो सारा कुछ उस सद्गुरु को सौंप चुका होता है और कहते हैं कि जब

तन-मन सभी कुछ गुरु का हो जाए तो उसमें फिर ऊँच, नीच, भेद-भाव, बुराई आदि का स्थान कहाँ? वह तो गुरु-रूप ही हो जाता है। मीरा को क्या पता था कि उसका फूफा गुरु जी से किस प्रकार का मिलाप करना चाहता है।

उसने राजा बैन सिंह की पुकार सुनी और सद्गुरु रविदास महाराज को विनती की-'प्रभु कृपा कीजिए, राजा बैन सिंह के गृह में चरण डाल कर उसे भी पवित्र कीजिए। सद्गुरु अपने भोले भक्त की फरियाद पर मुस्कुराए और कहने लगे 'मीरा ! जब उसने याद किया है तो जाना तो पड़ेगा ही।' सद्गुरु राजा के दिल की बात को भली-भाँति जानते थे।

सद्गुरु जब राजा बैन सिंह के राज्य खुराली में पहुँचे तो राजा ने अपने मंत्रियों को भेजकर सद्गुरु को बंदी बना कर जेल में भेज दिया। उस समय जेल के कैदियों से कठोर कार्य करवाए जाते थे, ताकि उनको शारीरिक कष्ट हों। उन दिनों में आटा पीसने वाली बिजली-चक्कियाँ नहीं होती थीं और कैदियों से हथचक्की से आटा पिसवाया जाता था।

सद्गुरु जी जब जेल में पहुँचे, उन्हें भी चक्की चलाने के लिए कहा गया। आप जी ने सभी कैदियों को चक्कियों के पास से हटा दिया और कहा कि आप आराम से प्रभु का सिमरन कीजिए। जब कैदी सिमरन करने लगे तो सभी चक्कियर्यों अपने आप चलने लगीं, आटा पिसने लगा और सभी हैरान रह गए, यह बात राजा के कानों तक भी पहुँच गई। कहने लगे- 'राजा' चक्कियाँ अपने आप आटा पीस रही है और सभी कैदी रविदास के कहने पर प्रभु का नाम जप रहे हैं।

जब से यह संत आया है उसने तो सभी कैदियों को अपने पीछे लगा लिया है। हमने तो सोचा था कि इससे दण्ड के रूप में आटा पिसवाएंगे पर उसने तो सभी को सजा से मुक्त कर दिया। राजा ने मंत्री की बात पर अधिक यान न दिया और कहने लगा कि यह जादूगर अपने कई चमत्कार दिखाने की कोशिश करते हैं परंतु उन्हें यह पता नहीं कि मैं उसकी चालों में आने वाला नहीं।

इधर गुरु महाराज जी जेल में बंद हैं और काफी समय व्यतीत हो गया वर्षा न होने के कारण उस राज्य में अकाल की भयानक स्थिति उत्पन्न हो गई। लोग पानी की बूंद और अन्न के दाने को तरसने लगे। अब राजा भी चिन्ता में पड़ गया। सभी गोदाम खाली हो गए। जनता भूख से व्याकुल हो गई। क्या किया जाए? राजा बैन सिंह ने अपने एक अनुभवी ज्योतिषी से पूछा-पण्डित जी! क्या कारण है कि प्रकृक्ति के प्रकोप से यहाँ वर्षा नहीं हो रही, पानी की एक-एक बूंद के लिए प्रजा व्याकुल है. भूख-प्यास से बच्चे तड़प रहे हैं, कोई उपाय बताइए? ज्योतिषी ने ज्योतिष लगाया और राजा से कहा कि आप ने शायद किसी संत-महापुरुष को अपनी कैद में रखा हुआ है और उसी के परिणाम स्वरूप आपका राज्य भूखमरी से पीड़ित है। जाओ उस महान तपस्वी के चरण स्पर्श करो और क्षमा मांगो। आपके अंहकार और उच्च जाति के अभिमान के कारण पूरी प्रजा दुख उठा रही है।

अपनी प्रजा की खातिर उस संत को मुक्त कर दीजिए।

अब राजा भी समझ गया कि यह फकीर कोई सामान्य जादूगर नहीं है। यह तो सच्च में पूर्ण संत है, जिसकी परख मीरा ने अपने ज्ञान से, अपनी भक्ति से की है। उसने सदगुरु रविदास को पाकर कोई गलती नहीं की बल्कि हमारे गुनाहों को भी बख्शाया है। राजा ने अपनी गलती के लिए सद्‌गुरु से क्षमा मांगी और याचना की, हे सद्‌गुरु जी। हम गुनहगार है आप बख्शनहार हो। हम पर दया करो, हमारे राज्य में पानी और अन्न की कमी हो गई है। आप कृपा करके पानी और अन्न की व्यवस्था कर हमारे प्राण बचाइए। आप कृपानिधान है, हमारे अन्नदाता हैं, प्राण परमेश्वर हो।

सद्‌गुरु जी कहने लगे 'प्रेमियों! मेरे पीछे-पीछे आते जाओ। थोड़ा आगे जाकर गुरु जी ने अपने दाहिने पांव की अँगुलि से एक पत्थर को हटाया और वहाँ से पवित्र जल की धारा प्रवाहित होने लगी जिसे पाकर प्यासे मनों की प्यास बुझ गई। लोग सद्‌गुरु की महिमा गाने लगे। वह स्थान आज भी (गांव खुलारगढ़ के पास) 'गुप्त गंगा' के नाम से जाना जाता है। पानी की प्यास मिटने के बाद राजा ने प्रार्थना की कि प्रभु अब अन्न की भी बख्शिश कीजिए। बच्चे भूख से व्याकुल हैं।

तभी सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने दो पत्थर दिए और कहा कि जाओ, इन दो पत्थरों के बराबर भार का अनाज लेकर आओ। लोग कहने लगे-'महाराज, घरों में तो अनाज का एक भी दाना नहीं है। हम तो जंगली कंद-मूल खाकर गुजारा कर रहे हो। महाराज जी ने प्रजा की ओर दृष्टि दौड़ाई और एक बुजुर्ग माता को संकेत से बुलाया। कहा,- 'माता जी! आप अपने घर से इन दो पत्थरों के बराबर का अनाज ले आओ। माता बोली, 'महाराज! मैं तो बहुत गरीब हूँ, अनाज तो राजा के भण्डार में भी समाप्त हो गया है, भला मेरी कोठी में दाने कहाँ? सद्‌गुरु जी ने पुनः फरमाया,- 'माता जी! घर जाकर एक बार देख तो आओ, शायद कुछ अनाज मिल ही जाए।

गुरु का आदेश पाकर वह स्त्री घर चली गई। सोचती है कि अनाज कहाँ से लाऊँगी, कोठी तो कब की खाली पड़ी है। घर पहुँच कर उसने कोठी खोली तो देखा कि कोठी अनाज से भरी पड़ी है। उस माता ने पत्थरों के बराबर अनाज लिया और भागी-भागी सद्‌गुरु जी के चरणों में पहुँच गई। शीश झुकाया और अनाज भेंट किया। सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने वह दाने खरास (खरास वह मशीन है जिसे बैलों द्वारा चलाकार आटा पीसा जाता था) में डाल दिए और कहा कि अब इस चक्की को चला दो। सद्‌गुरु जी ने उस चक्की को ऊपर से ढक दिया और कहा कि इसे कभी भी खोलना मत। खरास चलता रहा और उसमें से आटा निकलता गया। यह अद्‌भुत नज़ारा देखकर राजा बैन सिंह तथा अन्य लोग गुरु जी के शिष्य बन गए। लगातार आटा निकलता रहा लेकिन अनाज समाप्त न हुआ। अब राजा को लगा कि दो पत्थरों के बराबर अनाज अभी तक खत्म ही क्यों नहीं हो रहा, बड़े आश्चर्य की बात है? तो उससे रहा न गया और एक दिन उसने खरास से कपड़ा हटा कर देख ही लिया। उसमें अनाज वैसे का वैसे ही पड़ा हुआ था। अब खरास में से आटा निकलना बंद हो गया। आज भी चक्की के पुड उसी स्थान पर पड़े हुए हैं। 'खुराली' नाम के स्थान पर सद्‌गुरु रविदास महाराज जी की याद में गुरु घर का निर्माण किया हुआ है।

इस ऐतिहासिक एवं धार्मिक यादगार पर हर मास के ज्येष्ठ रविवार को बहुत बड़ा मेला लगता है। लोग दूर-दूर से महाराज जी के इस स्थान को देखने आते हैं।

सदगुरु रविदास महाराज और अहंकारी सेठ

जब हम होते तब तू नाही अब तूही मै नाही ।।

सद्गुरु रविदास महाराज जी प्रभु सिमरन कर लोगों के दुखों को दूर करते और उनको परमेश्वर के सच्चे नाम की दात देते। आप जी की रुहानियत और क्रांतिकारी सोच की महिमा घर-घर होने लगी। किसी को कोई भी कष्ट होता तो आप जी के चरणों में चला आता तो उनके सभी कष्टों का निवारन हो जाता। जिस कारण अनेक श्रद्धालु सद्गुरु जी की शरण में आने लगे। दूर-दूर तक सद्गुरु जी की महिमा के गीत गूंजने लगे। जो भी आप जी की शोभा सुनता, दर्शन करने चला आता। अब सेठ भी भला दर्शन करने से कैसे वंचित रह सकता था। हरीश सेठ जब भी महाराज जी की भक्ति एवं शक्ति की चर्चा किसी के मुख से सुनता, उसकी दर्शनों की लालसा बढ़ जाती। दिन-रात दर्शनों के लिए बैचेन होने लगा, लेकिन उस सेठ को काम से फुर्सत ही न मिलती। लालची स्वभाव और सांसारिक मोह-माया के जाल में लिप्त होने के कारण सोचता कि वहाँ जाने से मुझे न जाने कितने पैसों का घाटा पड़ जाएगा और जब कभी समय मिल भी जाता तो उसका जाति अहंकार बाधा बन कर सामने आ जाता क्योंकि वह सेठ समाज में ऊँच समझी जाने वाली जाति से संबंध रखता था और सद्गुरु रविदास जी की चमार जाति को निम्न समझा जाता था।

सेठ को लगता था कि यदि मैं अपने पण्डित-पुरोहितों को छोड़ कर सद्गुरु रविदास जी की शरण में गया तो लोग मुझे जीने नहीं देंगे। वे मुझे अपनी जाति बिरादरी में से निकाल देंगे। कोई कहेगा कि इतना बड़ा धनाढ़ और एक झोंपड़ी में रहने वाले फकीर के पास गया था? इसी सोच में उसने कई दिन गुजार दिए। एक दिन सेठ ने निश्चय कर ही लिया कि अब तो मैं उस तेजस्वी ज्योति के दर्शन करने अवश्य जाऊँगा। मुझे अब लोक-लाज की कोई परवाह नहीं है।

पूर्णिमा का शुभ दिन था। संगत गुरु-दर्शनों के लिए जा रही थी। सेठ भी संगत के साथ गुरु चरणों में पहुँच गया। वहाँ सेठ ने देखा कि दूर-दूर से हज़ारों की गिणती में श्रद्धालु गुरु जी की शरण में आए हैं। शबद-कीर्तन हो रहा है। फिर सद्गुरु रविदास महाराज जी के प्रवचनों की अमृत वर्षा हुई। आरती, अरदास की गई और संगत प्रशाद ग्रहण करती हुई गुरु जी को नमस्कार करने लगी। प्रशाद के साथ-साथ सद्गुरु जी श्रद्धालुओं को अमृत-कुण्ड से चरणामृत भी दे रहे थे। मुस्कराते हुए अमृतवाणी का आनंद मानती हुई संगत घरों को वापस जाने लगी। सेठ ने भी गुरु दर्शन किए, शीश झुकाया, प्रशाद ग्रहण किया लेकिन जब चरणामृत की बारी आई तो सेठ ने देखा कि जिस कठौती का पानी लेकर सद्गुरु जोड़े ठीक करते थे, उसी का पानी चरणामृत के रूप में दे रहे हैं। यह देखकर सेठ का मन बेईमान हो गया। स्वभाव अनुसार उसने चालाकी से काम लिया। उसने देखा कि संगत सद्गुरु से चरणामृत की अमूल्य दात पाकर कुछ हिस्सा पी लेती हैं और थोड़ा हिस्सा अपने सारे तन पर छिड़क लेती हैं। सेठ ने भी चरणामृत लिया और चालाकी से बाजुओं की ओर से सारा अपने कपड़ों में से नीचे गिरा दिया, मुँह में डालने का केवल नाटक ही किया। अब चरणामृत के दाग सेठ के कपड़ों में

लग गए। कपड़ों में पड़े दाग काफी गहरे थे। सफेद पहरावा पहनने वाले उस धनी सेठ को दाग लगे कपड़े कैसे भाते? वह शीघ्र ही लोगों से छिपते-छिपाते घर पहुँचा। घर पहुँचते ही उसने अपने दाग वाले कपड़े उत्तार दिए और एक कुष्ठ से पीड़ित व्यक्ति को दे दिए। जैसे ही उस रोगी ने यह कपड़े पहने, धीरे-धीरे उसका कुष्ठ ठीक होता गया। उसे यह लगा कि सेठ के कपड़े पहन कर उसे कुछ आराम मिल रहा है।

इसीलिए उसने उन्हीं दागी कपड़ों को कई दिन तक पहने रखा। प्रभु की कृपा हुई और उसका रोग हमेशा के लिए ठीक हो गया। कंचन जैसी देह पाकर वह कुष्ठ रोगी बहुत प्रसन्न हुआ। उसके परिवार वाले भी बहुत खुश थे। भगवान का शुक्र मनाने लगे। वह कुष्ठ रोगी अपनी तंदरूस्त काया से दिन-रात मेहनत करने लगा और अपने परिवार का पालन-पोषण करने लगा। जो सभी के लिए बोझ बना हुआ था. अब वह सभी का बोझ उतारने के योग्य हो गया था लेकिन दूसरी तरफ सेठ धीरे-धीरे कुष्ठ रोग का शिकार होने लगा। दागी कपडे पहन कर कुष्ठ रोगी तो पूर्णतौर पर तंदरुस्त हो गया पर कपड़े उतारने वाला सेठ बीमार हो गया। उसका सारा शरीर रोग से पीड़ित हो गया। सेठ की हालत काफी खराब रहने लगी। अनेक इलाज करवाए, दवाई करवाई, लेकिन कुष्ठ रोग दूर न हुआ।

एक सज्जन ने जब देखा कि सेठ कुष्ठ से पीड़ित है, तो पूछने पर पता चला कि सेठ ने काफी इलाज करवाया है, रोग ठीक नहीं हुआ। उस सज्जन व्यक्ति ने कहा कि आप नूरे के पास जाओ क्योंकि उसका कुष्ठ कुछ ही दिनों में ठीक हो गया है। उससे पूछो कि उसने किस वैद्य से दवाई करवाई है? फिर आप भी उसी वैद्य के पास चले जाना।

यह सुनकर सेठ ने तुरन्त अपने नौकरों को बुलाया और कहा कि उस नूरे को ढूँढो और जल्दी से मेरे पास लेकर आओ। बहुत तलाश करने पर नूरा मिल ही गया। नौकर उसे घेर कर सेठ के पास ले आए। जब नूरा सेठ के सामने आया तो उसे लगा कि यह चेहरा तो जाना-पहचाना लगता है। सेठ ने पूछा- 'तुम वही कुष्ठ रोगी तो नहीं! जिसे मैंने अपने दाग वाले कपडे दिए थे? नूरे ने कहा-'हाँ, सेठ जी! मैं वही हूँ। तो फिर यह बता कि तेरा कुष्ठ कैसे दूर हुआ? किससे दवाई ली? क्या किसी ज्योतिषी को दिखाया? नूरे ने जवाब दिया, 'नहीं सेठ जी ! मैं किसी डाक्टर के पास नहीं गया, पर एक बात का मुझे भली भाँति पता है कि जब से मैंने आप के द्वारा दिए गए कपडे पहने, तभी से मेरी पीड़ा कम होनी शुरू हो गई। मुझे कुछ-कुछ अच्छा अनुभव होने लगा। मन पहले से अधिक प्रसन्न रहने लगा। यह परिवर्तन मेरे घर वालों ने भी महसूस किया। जब मैं दूसरे कपड़े पहनता था तो मुझे शारीरिक पीड़ा शुरु हो जाती। इसलिए मैंने आपके द्वारा दिए हुए दाग वाले कपड़ों को कई दिन तक नहीं उतारा। देखते ही देखते मेरा रोग बिल्कुल ठीक हो गया। जन्म-जन्म के रोग समाप्त हो गए और मैं आप का मन ही मन धन्यवाद करने लगा। यह सब तो आप की ही कृपा है, जिस से मेरा कुष्ठ रोग ठीक हुआ है। नूरा सारी बात बता रहा था कि सेठ सोच में पड़ गया। मेरे कपड़ों में ऐसी कौन सी बात थी जिसे पहनने से इसका कुष्ठ रोग ठीक हो गया। काफी सोचने के बाद सेठ को याद आया कि मैं सद्गुरु रविदास जी के दर्शन करने गया था और पवित्र चरणामृत को मैंने गंदा पानी समझ कर अपने कपड़ों पर गिरा दिया था। उसी गलती का परिणाम आज भुगत रहा हूँ।

उस चरणामृत के पड़े दागों से यदि नूरे का कुष्ठ ठीक हो सकता है तो उसका पान करने से न जाने मेरे कितने विकार, कितने रोग दूर हो जाते। अब सेठ अपनी अमीरी को कोसने लगा और उसे पता चल गया कि उसकी अमीरी ने उसके विवेक को ढक लिया है। अब यह पैसा मेरा कुष्ठ रोग दूर नहीं कर सकता, इसका इलाज तो गुरु-दर्शनों से ही हो सकता है।

सेठ सद्गुरु रविदास जी के चरणों में जा पहुँचा। प्रणाम किया, पछतावे के आँसू आँखों से टप टप गिरने लगे और वह विनती करने लगा-प्रभु! मुझे माफ कर दो। मैं गुनाहगार हूँ। मैं आप जी की महिमा को नहीं समझ पाया। चरणामृत की कीमत को नहीं पहचान सका। हे प्रभु! मुझे अब चरणामृत देकर मेरे रोगी शरीर को नीरोग करो। मुझे पापमुक्त कर अपने चरणों में लगा लो। दया के सागर, दीनबन्धु ने सेठ को उठाया, प्रसाद दिया, चरणामृत पिलाया तो सेठ का कुष्ठ न जाने कहाँ भाग गया। सेठ फिर से स्वस्थ हो गया। सद्गुरु की महिमा गाने लगा। वह सदा-सदा के लिए सद्गुरु जी की शरण में आ गया। सद्गुरु जी से दीक्षा लेकर उनका शिष्य बन गया। इसी परंपरा के कारण आज भी किसी विशेष प्रकार के चमड़ी रोगों के लिए कई रोगी कठौती का अमृत धारण करते हैं। (भले ही ये लोग गुरु रविदास जी को मानें या न मानें पर जब कोई किसी कारणवश अस्वस्थ होता है तो वह किसी जोड़े बनाने वाले के कुण्ड से अमृत ग्रहण करता है।)

गुरु गोरख नाथ के साथ भेंट

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में सद्गुरु रविदास महाराज जी की विचारधारा से भक्ति काल का प्रारंभ हुआ। उस समय हिंदुओं द्वारा धर्म में लाई गई जटिलता, कर्मकाण्डों की अधिकता, तत्कालीन राजाओं की भोग विलास की प्रवृत्ति के कारण नारी जाति एवं दलित वर्ग का शोषण हो रहा था। सामाजिक कुरीतियों के जोर पकड़ने से सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक स्थिति पूर्ण रूप से प्रदूषित हो चुकी थी। सामान्य जन हताश और निराश हो चुका था। लोग अपना धर्म तक बदलने के लिए तैयार थे। ऐसी स्थिति में भक्ति काल के अनेक संत कवियों एवं महापुरुषों ने भक्ति का सहज मार्ग दिखाकर लोगों को जीवन की नई किरण दी। इस संत धारा में सद्गुरु रविदास जी, सद्गुरु कबीर जी, सद्गुरु नामदेव जी का विशेष योगदान रहा।

सद्गुरु रविदास महाराज जी ने चाहे निम्न वर्ग कहलाई जाने वाली जाति में जन्म लिया पर आप जी की वैज्ञानिक दृष्टि, कठोर साधना, सादा जीवन और महान सोच के आगे बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को भी नतमस्तक होना पड़ा। जब सद्गुरु रविदास महाराज जी ने राजा हरदेव सिंह नागर मल्ल की कचहरी में चार युगों के जनेऊ दिखाए, उलटी गंगा बहाई, पानी में पत्थरों को तैराया तो रानी झालां बाई, राजा हरदेव सिंह, राजा सांगा आदि राजा सद्गुरु जी के शिष्य बन गए।

सद्गुरु रविदास महाराज जी की महिमा के चर्चे घर-घर, गली-गली होने लगे। चारों ओर आप जी की शोभा एवं महानता फैल गई। झोंपड़ी में रहने वाला फकीर, महलों में रहने वाले शाही घरानों के गुरु के रूप में पहचाना जाने लगा। सद्गुरु जी की महानता के सोहलों की भनक उस समय के महान रिद्धियों-सिद्धियों के मालिक गोरख नाथ के कानों में पड़ गई। सद्गुरु जी की लोकप्रियता को देखकर गुरु गोरख नाथ सोच में पड़ गए कि मैंने तो राजा गोपी चंद जैसे बड़े-बड़े राजाओं को भी अपना शिष्य बना लिया लेकिन ऐसा कौन गुदड़ी का लाल है, जिसकी शोमा मुझ से कहीं अधिक है। बच्चे-बच्चे की जुबान पर उस महात्मा का नाम है। क्यों न किसी दिन उसके पास जाकर मैं उसे अपना सेवक बना लूँ।

कठोर तपस्या करके रिद्धियों-सिद्धियों को तो पाया जा सकता है,

माया का जाल बिछा कर दूसरों को पल भर के लिए चकाचौंध किया जा सकता है, लेकिन मन को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। इन सिद्धियों के मालिक और प्रभु भक्त में केवल इतना ही अंतर रहता है कि रिद्धि ायों-सिद्धियों को पाने वाला उस एक परम सत्ता वाले मालिक से दूर रहता है, स्वयं को ही मालिक समझ बैठता है। अहं उसका एकमात्र हथियार बन जाता है और उस परम शक्ति को भी वह अपनी मुट्ठी में कर लेने की कोशिश करता है। लेकिन प्रभु का सेवक अपना सारा कुछ उस मालिक को सौंप देता है।

विनम्रता और मीठी वाणी ही उसके आभूषण होते हैं। वह अपना कुछ भी नहीं समझता। सब कुछ उस मालिक का समझ कर उसी को समर्पित कर देता है और उस मालिक के नाम का सिमरन श्वास-श्वास में करता है।

अहं और ईर्ष्यावश गुरु गोरख नाथ सद्गुरु रविदास महाराज जी को अपना शिष्य बनाने की उधेड़बुन में सुमेर पर्वत से अपने शिष्यों के साथ काशी के लिए चल पड़े। यात्रा करते हुए वे बनारस पहुँचे। वहां से सद्गुरु रविदास महाराज जी के निवास स्थान पर पहुंच कर उन्होंने सद्गुरु के दर्शन किए। सद्गुरु रविदास महाराज जी का निवास स्थान और सादा पहरावा देख कर मन ही मन गुरु गोरख नाथ मुस्कुराया और सोचने लगा कि इस गरीब को तो केवल रहने के लिए एक अच्छा मकान देकर और कुछ कीमती वस्त्र देकर ही अपने वश में किया जा सकता हैं।

सद्गुरु रविदास जी ने जब गुरु गोरखनाथ को अपने आवास की तरफ आते देखा तो वे बहुत खुश हुए। आप जी ने उनको सम्मान सहित आसन दिया और कहने लगे, 'नाथ जी, आप ने हम पर बड़ी कृपा की है। आप ने हमारे गृह में चरण डाल कर और हमें दर्शन देकर हमें धन्य कर दिया है। आज तो मानो चींटी के घर नारायण आ गए हों। नाथ जी ! अब आप बताइए हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं? सद्गुरु जी के मुखारविंद से 'सेवा' शब्द सुनते ही नाथ जी ने जवाब दिया कि इतनी निर्धनता में आप मेरी क्या सेवा कर सकोगे? परंतु फिर भी आप मेरा यह टूटा हुआ जोड़ा गांठ दो।

लेकिन जोड़ा ठीक करने से पहले मुझे इसे ठीक करने की मजदूरी अवश्य बता दीजिए। महाराज जी हाथ जोड़ कर कहने लगे, 'नाथ जी, जोड़े की मुरम्मत करने के लिए मैं सभी से एक कसीरा (एक पैसा) लेता हूँ, पर आप तो संत महात्मा हैं, आपका जोड़ा ठीक करना तो मेरा कर्त्तव्य है। इसके बदले में मैं कोई मज़दूरी नहीं लूंगा। मुझे तो सेवा का सुअवसर मिला है। गुरु गोरख नाथ सद्गुरु जी की बात सुनकर हँसने लगे और कहने लगे कि रविदास ! तेरी गरीबी का कारण भी यही है। इतनी कम मज़दूरी में तो गुजारा करना बहुत मुश्किल है। खैर, कोई बात नहीं।

अभी मैं अपने जोड़े की मुरम्मत के बदले तुझे एक पारस देता हूँ जिससे सोना बना कर तुम अपनी जरूरत के अनुसार बाजार में बेच सकते हो और उन पैसों से अच्छा मकान बना कर शाही ठाठ का जीवन बिता सकोगे। एक बढ़िया सा विश्राम स्थल भी बना लेना, जहां आप जी के सेवादार एवं साधु-महात्मा ठहर सकें। यह पारस बहुत ही कीमती एवं दुर्लभ है। इसे पाने के लिए तो लोग कई जन्म बिता देते हैं। किसी विरले के पास ही ऐसा पारस होता है। पर मैं यह पारस तेरी गरीबी और ईमानदारी देखकर ही तुझे दे रहा हूं। नाथ के मुख से पारस की ढेर सारी विशेषताएं सुनकर सद्गुरु जी बोले, 'नाथ जी ! मुझे इस पत्थर की कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे जितना धन चाहिए, मेहनत करके मैं उतना धन कमा ही लेता हूँ और अपने हाथों सेकमाए हुए धन से संतोष का जीवन व्यतीत करता हूँ। घर-परिवार का गुजारा भी मालिक की कृपा से बहुत अच्छा चल रहा है। मेरी गरीबी पर आप तो क्या, सभी लोग हँसते हैं।

लेकिन मुझे गरीबी का कभी एहसास नहीं हुआ। जब मुझे किसी अभाव का अनुभव ही नहीं हुआ तो मैं सोना बनाकर क्या करूंगा? यदि मैं पारस से सोना बनाकर बाजार में बेचने जाऊँगा तो

लोग तरह-तरह की बातें बनाएंगे। इतना सोना रविदास के पास कहां से आया? शायद इसने चोरी की है या फिर इसकी शिष्या रानी ने इसे सोना दिया होगा। यदि सोना बनाकर मैं घर में रखूंगा तो भी चोर मेरी नींद और चैन समाप्त कर देंगे। अतः मुझे किसी पारस की ज़रूरत नहीं है।

गोरख नाथ ने जो सोचा था, उसके बिल्कुल विपरीत सद्गुरु का उत्तर सुनकर गुरु गोरखनाथ की सारी कल्पना मिट्टी में मिल गई। महाराज जी कहने लगे कि नाथ! मुझे कोई पारस नहीं चाहिए पर मैं आपका जोड़ा श्रद्धा से गांठ कर अपना कर्तव्य एवं सेवा अवश्य पूरी करूंगा। गोरख नाथ का जोड़ा लेकर सद्गुरु रविदास जी ने टूटी हुई जगह से जोड़ने के लिए धागे को मुंह में डाला और थूक लगाकर जब धागा बाहर निकाला तो वह धागा सोने की तार में बदल गया। उस सोने की तार से नाथ के जोड़े की मुरम्मत कर दी। नाथ यह सारा कौतुक देखकर हैरान रह गया। सोचने लगा कि वह थूक जिसे हम अपवित्र मानते हैं, यदि उससे रविदास सोना बना सकता है तो उसे गरीब कैसे कहा जा सकता है? अब गोरख नाथ कोई दूसरा उपाय सोचने लगा। सोचा कि रविदास सोना तो बना सकता है पर हीरे-जवाहरात इसके पास नहीं हैं। मैं इसे हीरे-जवाहरातों का लालच देता हूँ, फिर शायद यह मान ही जाए और मेरा शिष्य बन जाए।

गुरु गोरख नाथ के पास एक तँबी थी, जिस में हीरे-जवाहरात तथा अन्य अनमोल वस्तुएं थीं। गोरखनाथ ने गुरु रविदास जी के आगे तूंबी रखी और बोला, 'रविदास ! जितने हीरे आप को चाहिएं, इस में से ले लो। आप के पास सोना बनाने के साधन तो हैं पर मेरे जैसी कोई तूंबी आपके पास नहीं है, जिसमें अनमोल हीरे हों। सद्गुरु जी सब कुछ समझ रहे थे। अन्तर्यामी सभी के दिलों की जानता है। बोले, नाथ जी ! मेरे पास तूंबी तो नहीं है पर यह कठौती है। जब कठौती के भीतर गुरु गोरख नाथ ने अपनी नज़र दौड़ाई तो उसमें क्या देखता है कि सभी देवी-देवता, पूरा ब्रह्माण्ड और पवित्र गंगा का प्रवाह हो रहा था। यह सब देखकर गुरु गोरख नाथ की आंखें खुल गई। आश्चर्यचकित होकर सद्गुरु जी से पूछने लगे कि आप के पास समस्त शक्तियाँ हैं, फिर भी आप गरीबी का जीवन क्यों व्यतीत कर रहे हो? उस समय सद्गुरु महाराज जी ने इस शबद का उच्चारण किया :-

दारिदु देखि सभ को हसै ऐसी दसा हमारी।
असटदसा सिधि कर तलै सभ क्रिपा तुमारी ।।१।।
तू जानत मै किछु नहीं भवखंडन राम।
सगल जीअ सरनागती प्रभ पूरन काम ।। १ ।। रहाउ ।।
जो तेरी सरनागता तिन नाही भारु ।
ऊच नीच तुम ते तरे आलजु संसारु ।।२।।
कहि रविदास अकथ कथा बहु काइ करीजै।
जैसा तू तैसा तुही किआ उपमा दीजै ।। ३ । ।१ ।।

(पृष्ठ संख्या 858)

हे नाथ! अकेले तुम ही नहीं, सारी दुनिया मेरी गरीबी को देखकर मुझ पर हँसती है, पर इरा दुनिया के लोगों को यह नहीं मालूम कि मेरे पास प्रभु के नाम का जो धन है, उस नाम रूपी धन के

आगे समाज के अन्य सभी धन फीके पड़ जाते हैं। सभी प्रकार की रिद्धियां सिद्धियां उस नाम के ही वश में हैं, सच्चे हृदय से उस मालिक के नाम का सिमरन करने वाले भक्त में विनम्रता आ जाती है। अहम् का नाश हो जाता है और जहाँ 'मैं' होती है वहां भगवान नहीं होते। जहाँ भगवान होते हैं वहां मैं नहीं होती।

जब हम होते तब तू नाही अब तूही मै नाही।

गुरु गोरख नाथ को समझाते हुए उस समय सद्गुरु रविदास जी ने कहा कि जिन रिद्धियों-सिद्धियों का प्रयोग अपने स्वार्थ हेतु या अहमवश किया जाता है, उससे कभी कल्याण नहीं हो सकता। मालिक हमेशा अपने भक्तों के प्रेम से ही वश में आता है। अतः उस मालिक की बन्दगी कर, तन-मन अर्पित कर, प्रभु को प्रसन्न करने से ही मानव जीवन सफल हो सकता है। सद्गुरु जी का ज्ञान सुनकर गुरु गोरख नाथ जी ने आप को शीश झुकाया और कहा कि आपकी महिमा अकथ है, आप प्रशंसा के योग्य हैं, महान हैं। सचमुच आप 'धन्य-धन्य' के योग्य हैं। यह कहकर गुरु गोरखनाथ वापस सुमेर लौट गए।

सद्‌गुरु रविदास महाराज और सिकंदर लोधी

दिल्ली सल्तनत पर लोधी वंश ने 1451 ई० से 1526 ई० तक शासन किया। लोधी वंश सल्तनत काल का अन्तिम और अफगानों के नेतृत्व वाला पहला शासक परिवार था। इस राजवंश के तीन शासक, बहलोल लोधी, सिकंदर लोधी और इब्राहिम लोधी राज्य का गौरव लौटाने में असफल रहे। लोधी वंश के शासकों ने सल्तनत को संगठित करने का प्रयत्न किया, विद्रोही गवर्नरों की शक्ति को दबाने का भी प्रयत्न किया, जौनपुर के राज्य से बहुत समय तक संघर्ष भी चलता रहा और अंत में उसे अधीन कर ही लिया गया।

लोधी वंश में सिकंदर लोधी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सन् 1489ई० से लेकर 1526 ई० तक यह दिल्ली में सुल्तान के रूप में काम करता रहा। अपनी मूल परंपराओं के विरूध सिकंदर ने अफगान सामंतों की तुलना में अपनी स्थिति सुधारने का अत्यधिक प्रयास किया। उस ने पश्चिमी बंगाल तक गंगा की घाटी पर अपना अधिकार कर लिया। उसने दिल्ली को राजध गानी से हटाकर एक नए नगर में परिवर्तित कर दिया जो बाद में 'आगरा' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसे लगता था कि वह आगरा में और भी अच्छी तरह से अपने राज्य का नियंत्रण कर सकेगा।

सिकंदर लोधी ने जनता की भलाई के लिए अनेक कार्य किए। अपने कार्यों से उसने प्रजा को राजभक्त और राज्य को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया। उसने वस्तुओं के मूल्य को घटा कर राज्य की आर्थिक दशा सुधारने का भी बीड़ा उठाया। लोधी

सुलतान अफगान थे और वे अफगानों की राजभक्ति पर निर्भर थे। वे नहीं जानते थे कि राजा की शक्तिशाली स्थिति को देखकर वे सरदार अधिक प्रसन्न नहीं होंगे। कुछ समय बाद उनमें से कुछ सरदारों ने विद्रोह करके असंतोष को व्यक्त किया। प्रमुख अफगान सरदारों ने सुलतान सिकन्दर लोधी का भी बडा विरोध किया और काबुल के शासक बाबर से मिलकर सरदारों ने षड्‌यंत्र रचा। जिस कारण 1526 ई० में लोधी वंश का स्थान मुगल वंश ने ले लिया।

सिकंदर लोधी जब अपने राज्य का विस्तार करता हुआ बनारस पहुँचा तो उसने बनारस पर अपना अधिकार जमा लिया। तभी उसे पता चला कि बनारस में सद्‌गुरु कबीर और सद्‌गुरु रविदास नाम से विख्यात दो सन्त महापुरुष रहते हैं।

जिनकी महिमा बनारस और इसके आस-पास के क्षेत्र में फैल चुकी थी। अपनी विद्‌वता एवं परमार्थी शक्ति से इन्होंने सभी को नतमस्तक होने पर विवश कर दिया था। यहाँ तक कि वहाँ का राजा भी सद्‌गुरु कबीर और सद्‌गुरु रविदास महाराज जी की बहुमुखी प्रतिभा और पवित्र सहज भक्ति का लोहा मान चुका था। सिकंदर लोधी को यह भी ज्ञात हो चुका था कि सद्‌गुरु कबीर का जन्म एक मुस्लिम जुलाहा परिवार में हुआ था लेकिन हिन्दु दम्पत्ति द्‌वारा पालन-पोषण के कारण वे हिन्दु बन गए हैं।

उघर सद्गुरु रविदास महाराज जी के बारे में जानने के बाद राजा सोचने लगा कि ये सन्त जो पूरे समाज में अपनी महानता फैला चुके हैं, क्यों न पहले इनको ही अपनी मुट्ठी में किया जाए और फिर इनके श्रद्धालु स्वयं ही अपने श्रद्धेय के पीछे चले आएँगे। यह सोचकर सिकन्दर ने इन सन्तों को मुस्लिम बनाने का निश्चय कर लिया। उसने सोचा कि इन महापुरुषों को मुस्लिम बना लेने से इस्लाम धर्म की महानता भी बढ़ जाएगी, धर्म का विस्तार हो जाएगा। आप को स्मरण होगा कि सभी मुस्लिम शासकों ने जहाँ भारत को लूट कर धन इकट्ठा किया था. वहीं उनकी धार्मिक कटट्टता के कारण वे सर्वप्रथम इस्लाम धर्म का भी प्रसार करना चाहते थे। जो उनके कहने पर अपना धर्म बदल लेता था, वे उनकी जान बख्श देते और अपने धर्म की अन्य सुविधाएं भी प्रदान कर देते। इसी उद्देश्य से सिकन्दर लोधी ने महान सन्त सद्गुरु रविदास महाराज जी और सद्गुरु कबीर जी को मुस्लिम बनने के लिए कहा।

पहले तो शासक सिकन्दर ने इन महापुरुषों को प्यार से समझाकर धर्म परिवर्तित करने के लिए कहा लेकिन जब उसकी बात का सन्तों पर कोई प्रभाव न पड़ा तो उसने इन महापुरुषों को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर मुस्लिम बनने के लिए कहा। मोह-माया से निर्लिप्त उन महापुरुषों को भला राजा द्वारा दिए ये प्रलोभन कैसे बदल सकते थे? सारी दुनिया का भला चाहने वाली वे नूरी शक्तियाँ मूर्ख राजा की बातों में कहाँ आने वाली थीं? राजा कहने लगा कि महात्मा जी! हम आपको राजगुरु बना देंगे, आधा राज्य भी दे देंगे, आप हमारा धर्म स्वीकार कर लीजिए। पर इन सन्तों ने जब सारा कुछ ठुकरा दिया तो सिकन्दर के क्रोध की कोई सीमा न रही।

जब राजा की मानसिकता का कोई जोर न चला तो उसने अपनी भौतिक शक्ति का प्रयोग कर सद्गुरु रविदास जी को जेल में बन्द करवा दिया। वहाँ आप जी को अनेक शारीरिक कष्ट देने की कोशिश भी की गई। मस्त हाथियों के आगे डाल दिया गया पर जानवर हाथी उस मूर्ख मानव से कहीं अधिक विवेकी निकले। हाथी गुरु जी की शक्तियों को पहचान गए। मदमस्त हाथी महाराज जी को प्यार करने लगे। मारने की बजाए आप जी के चरण स्पर्श करने लगे। राजा यह सब कुछ देख रहा था। सोच रहा था कि किसी भी साधन या षडयंत्र से इनका कुछ भी नहीं बिगड़ा। मेरे सारे हथियार बेकार हो गए हैं। आखिर बात क्या है? इन विचारों को दोहराता हुआ जब एक रात सिकंदर लोधी सो रहा था तो उसे सद्गुरु रविदास महाराज जी एक दिव्य ज्योति के रूप में दिखाई दिए। सुबह होते ही जब राजा नमाज पढ़ने मस्जिद में गया तो वह जिधर भी देखता है उसे उधर सद्गुरु रविदास महाराज जी ही नज़र आते हैं।

आप जी के माथे पर चमकता नूर इतना तेज था कि लोधी इस तेज को सहन न कर सका। जब राजा ने सद्गुरु के इलाही रूप के दर्शन किए तो वह कांप उठा। मन के सारे विचार शांत हो गए और अपने गुनाहों को याद कर राजा पश्चाताप की आग में जलने लगा। सोचने लगा बड़ा राजा बनने के लोभ में मैं उस परम शक्ति को भी नहीं पहचान सका। अतः राजा सद्गुरु रविदास महाराज जी की शरण में गया। अपनी भूल के लिए करबद्ध प्रार्थना की- महाराज! मैं लोगों की जान लेने वाला हत्यारा हूँ। मैं आपको भी नहीं पहचान पाया। दुनियावी शान और शौकत को पाने के लिए मैं अपने

मानव उद्देश्य को भूल चुका था। राक्षसी प्रवृत्ति ने मेरी बुद्धि पर पर्दा डाल दिया था. मुझे क्षमा कीजिए, अपने चरणों में स्थान देकर मेरा उद्धार कीजिए। महाराज ! लोगों की बातों में आकर मेरी अज्ञानता का घेरा बढ़ता ही गया। कृपया! मेरे गुनाह माफ कर दीजिए।

सद्गुरु रविदास महाराज जी, जो दया के सागर थे, ने सिंकन्दर लोधी को ऊपर उठाया और सीने से लगाकर कहने लगे हे राजा! यदि तूने कुछ जीतना ही है तो अपना मन जीतो, अपने लोभ पर काबू कीजिए। मानव के साथ प्यार का नाता जोड़िए। कोई हिन्दु-मुसलमान नहीं है। सभी एक ही परम ज्योति की संतान हैं, हम उसी का एक अंश है और उसी ज्योति में मिलकर ही हम मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं। यह दुनिया तो झूठी माया है जो इस माया की चमक में आ जाता है, वह नष्ट हो जाता है और आवागमन के चक्र में ही फंसा रहता है। यदि तुम भी अपना उद्धार करना चाहते हो तो मालिक के नाम का सिमरन करके मानवता का दीप जलाओ'।

सद्गुरु के अमृत वचन सुनकर लोधी की आँखें खुल गई। उसने जिस जेल में सद्गुरु जी को बन्द किया हुआ था, वहाँ नमाज़ पढ़ी और पवित्र मस्जिद का निर्माण करवाया। आज भी उस स्थान पर बनी यह मस्जिद "बापी मस्जिद" के नाम से जानी जाती है।

सद्गुरु नानक देव जी से भेंट

सच्च साऊदा विरला को पाए, पूरा सतिगुरू मिले मिलाए।।
गुरमुखि होयि सु हुकम पछानै, मानै हुकम समायिदा।

भारत में भक्ति लहर से पहले चहुँ ओर भौतिकता और विलासता का बोलबाला था। लोग प्रभु के नाम को मानो भूल ही चुके थे। अमीर सत्ताधारी वर्ग और उच्च कुलीन लोग गरीब जनता का प्रत्येक प्रकार से शोषण कर रहे थे। प्रभु से बेमुख हो जनता कर्मकांड़ों एवं आडम्बरों में फंसी हुई थी। यदि कोई प्रभु की भक्ति करता भी तो वह सिर्फ दिखावे मात्र के लिए या फिर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए। आम लोग जो सच्चे मन से प्रभु का सिमरन करना चाहते थे, उनको भी धर्म के ठेकेदार भ्रम में डाल देते और महंगी पूजा सामग्री द्वारा पूजा करने के लिए प्रेरित करते। साथ ही वे पाखण्डी पुजारी उन लोगों को यह कह कर डराते भी कि बिना पूजा सामग्री के भगवान कभी खुश नहीं हो सकता जिस कारण शोषित वर्ग में भी निराशा फैल गई। वे महंगी सामग्री नहीं खरीद सकते थे। यज्ञ, हवन आदि करना उनकी पहुँच से बाहर होता था।

ऐसी परिस्थिति में वे अपने जीवन से हताश होने लगे। उसी समय भक्ति लहर के महान संत सद्गुरु नामदेव, सद्गुरु रविदास, सद्गुरु त्रिलोचन, सद्गुरु कबीर आदि महापुरुषों ने धरती पर अवतार लिया।

इन सभी महापुरुषों ने अपने भक्ति मार्ग से लोगों के मनों में जीने की आशा नगाई। ज्ञान का प्रकाश किया और लोगों को बताया कि भगवान किसी भी गौतिक व बहुमूल्य सामग्री के मोहताज़ नहीं और न ही प्रभु किसी अमीर यक्ति का है. वह तो दीन-बन्धु है और सच्चे मन से उसकी भक्ति करने वाला कोई भी प्राणी उसे अपने भीतर से ही पा सकता है। इन संत महापुरुषों ने जनता को भ्रम से निकाल कर सहज प्रभु भक्ति का सही मार्ग बताया। तभी इस काल को भक्तिकाल का नाम दिया गया। इन सन्त महापुरुषों को हमारे बुद्धिजीवि विद्वानों ने कहीं पर सन्त और कहीं-कहीं पर 'भक्त' कह कर सम्बोधित किया है। संकीर्ण सोच और मनुवादी विचारधारा वाले सन्त, भक्त और गुरु में अन्तर बताते हुए कहते हैं कि भक्त और गुरु में बहुत अन्तर है।

परन्तु उनकी ऐसी सोच निराधार है। गुरुवाणी में भक्त, संत, गुरु और सद्गुरु आदि शब्द पूर्ण सन्तों के लिए ही प्रयोग किए गए हैं। कोई भी गुरु हिले भक्त कहलाता है और प्रभु की निःस्वार्थ सच्ची भक्ति करने वाले भक्त को ही सन्त की उपाधि दी जा सकती है। जब पूर्ण सन्त व्यक्ति सभी आदर्श गुणों को अपने जीवन में अपना कर समाज के समक्ष एक उदाहरण बन जाता है, लोग उसके चरित्र से प्रभावित होते हैं, उसके आचरण को अपने आचरण में ढालने का प्रयत्न करते हैं, उनके प्रवचनों को उपदेश आदेश समझ कर मानने लगते हैं तो वही सन्त महापुरुष गुरु का रूप धारण कर लेता है जो हमें अन्धकार से निकाल कर परम पिता परमेश्वर के दर्शन करवाता है। ऐसे सद्गुरु की

शरण में जाकर ही हम मुक्ति की प्राप्ति कर सकते हैं और फिर इनमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

"सन्त अनंतहि अंतरु नाही"

भक्तिकाल के ये सन्त महापुरुष रमते योगियों की तरह जगह-जगह जाकर लोगों को प्रभु भक्ति की प्रेरणा देते। जनता को कर्मकाण्डों और झूठे आडम्बरों से बाहर निकाल कर सहज भक्ति का मार्ग बताते, सद्गुरु कबीर जी की वाणी में भी लिखा है :-

जो पाथर कर कहते देव ।।
ता की बिरथा होवै सेव ।।
जो पाथर की पांई पाइ ।।
तिस की घाल अजाई जाइ ।।1।।
ठाकुरु हमरा सद बोलंता ।।
सरब जीआ कउ प्रभु दानु देता।।1।।
रहाच अंतरि देउ न जानै अंधु ।।
भ्रम का मोहिआ पावै फंधु ।।
न पाथरु बोलै ना किछु देइ ।।
फोकट करम निहफल है सेव।। 2 ।।
जे मिरतक कउ चंदनु चड़ावै ।।
उस ते कहहु कवन फल पावै ।।
जे मिरतक कउ बिसटा माहि रुलाई ।।
तां मिरतक का किआ घटि जाई ।।३।।
कहत कबीर हउ कहउ पुकारि ।।
समझि देखु साकत गावार।।

(पृष्ठ संख्या 157)

दूजै भाइ बहुतु घर गाले ।।
राम भगत है सदा सुखाले । |4| |4| |12||

(पृष्ठ संख्या 1160)

कहते हैं कि भक्ति का सही मार्ग लोगों को बताने के लिए सद्गुरु कबीर, सद्गुरु रविदास जी वाराणसी से रवाना हुए। उत्तर-प्रदेश गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार आदि से होते हुए पंजाब में आए।

जब चूहड़काने की धरती पर पहुँचे तो वहाँ पर आप जी का मिलाप श्री गुरु नानक देव जी के साथ हुआ। जिस का प्रमाण हरनाम सिंह लाखा की पुस्तक **'गुरु रविदास दर्शन और जीवन'** के पृष्ठ संख्या 137 पर मिलता है। लेखराज परवाना की पुस्तक **'गुरु रविदास किरतां'** के पृष्ठ संख्या 118 और

प्रोफेसर गुरनाम सिंह मुक्तसर की पुस्तक **'कहि रविदास चमारा'** के पृष्ठ संख्या 257 पर भी श्री गुरु नानक की सद्गुरु रविदास जी के साथ मुलाकात का प्रमाण मिलता है।

इतिहास के अनुसार सद्गुरु नानक देव जी जब यौवन अवस्था में थे तो उनके पिता श्री मेहता कालू राम ने आप को कोई काम धन्धा करने के लिए कहा।

पिता ने कहा, बेटा! न तो तूने कोई स्कूली विद्या प्राप्त की और न ही किसी अन्य काम में ही कामयाबी हासिल की है। लोग क्या कहेंगे कि जवान बेटा बिना काम के घर में बैठा है। अतः तुम कोई व्यापार ही कर लो। इसी उद्देश्य से पिता कालू राम ने सद्गुरु नानक देव जी को 20 रुपए दिए और कहा कि बेटा! इसका व्यापार करके आओ। सोच समझ कर ही व्यापार करना। ऐसा सौदा करना जिसमें कोई नुक्सान या घाटे का डर न हो। चूहड़काने जाना और कोई लाभ वाला सौदा करके आना। पिता ने भाई 'बाले' को भी साथ भेजा ताकि गुरु नानक कोई घाटे वाला सौदा न कर आएं। पिता की आज्ञा पाकर सद्गुरु नानक देव जी और भाई बाला जी व्यापार के लिए निकल पड़े। राय भोय की तलवंडी से चलकर वे दोनों चूहड़काने पहुँच गए।

वहां एक विशाल सन्त सम्मेलन हो रहा था। महान सन्तों द्वारा प्रवचन किए जा रहे थे। श्रद्धालुजन प्रवचनों से मंत्रमुग्ध हो उनका रसास्वादन कर रहे थे। मीठी वाणी की मधुर आवाज श्री गुरु नानक देव और भाई बाला जी के कानों में भी पड़ी। उनका ध्यान उस सम्मेलन की ओर आकर्षित हो गया। महापुरुषों की वाणी को सुनकर गुरु नानक देव जी बहुत प्रभावित हुए। उनको लगा कि हमें जिस मंजिल की तलाश थी, वह मंजिल मिल गई है। जैसे प्यासे को पानी और भूखे को भोजन मिल गया हो। प्रवचन समाप्त हुए और गुरु नानक देव जी भाई बाले के साथ साधुओं के पास बैठ गए। उन सन्तों के रूहानी चेहरे को देखकर सद्गुरु नानक जी को समझने में देर न लगी कि ये सच्चे संत हैं। इनकी वाणी ही अशांत मनों को शांति प्रदान कर सकती हैं। तब गुरु नानक जी ने सोचा कि ऐसे साधु सन्तों की सेवा करना ही तो जीवन का उद्देश्य है और यह न जाने कब से इस सम्मेलन में बैठे हैं और इन्होंने भोजन भी किया होगा या नहीं? यदि पिता के दिए बीस रुपयों से इन साध् तुओं को भोजन करवा दिया जाए तो यही "सच्चा सौदा" होगा क्योंकि पिता जी ने आते समय समझाया था कि बेटा! सच्चा सौदा करके आना। शुक्र है कि मैं अपने पिता जी के हुक्म का पालन कर सकूँगा। दूसरा, अभी तक जितने भी पंडितों को सुना. वे सभी कर्मकाण्ड, रुढ़िवाद एवं जातिवाद विचाराध् तारा को कायम रखने का ही संदेश दे रहे थे।

इन महापुरुषों ने ही जीवन का सत्य बताया है। यहाँ यह बताना भी उचित होगा कि साधारण बालक दिखने वाले गुरु नानक देव जी कोई सामान्य व्यक्ति नहीं थे। वे भी इलाही ज्योति थे। बचपन से प्रभु के नाम का सिमरन कर, उसी में तल्लीन रहने वाले इस बालक को घर वाले समाज की मोह-माया में फंसाना चाहते थे। वे चाहते थे कि वे भी अन्य बालकों की तरह धन कमाने का कोई व्यापार करें तांकि समाज में उनका भी धनी लोगों में नाम आ जाए। गुरु नानक देव जी तो ऐसे जौहरी थे जो राम-नाम के धन की परख करने वाले थे।

उन्हें सच्चे नाम रूपी हीरे की पहचान थी और यही कारण था कि आप जी ने सद्गुरु नामदेव, सद्गुरु रविदास, सद्गुरु कबीर को भोजन खिलाने का निर्णय लिया। भाई बाले से परामर्श किया कि बाले, यह सौदा ठीक रहेगा? बाले ने कहा, 'यह तो पिता-पुत्र का मामला है, इसे आप ही निपटाएं।

गुरु नानक देव जी ने बीस रूपए का अन्न खरीद कर साधुओं को भोजन करवा दिया और प्रसन्नचित घर लौट आए। कई विद्वानों ने लिखा है कि गुरु नानक देव जी ने बीस रुपए का भूखे साधुओं को भोजन करवा दिया था। गुरु प्रेमियो ! आप ही बताइए कि साधु भी कभी भूखे होते हैं? सद्गुरु नानक जी बचपन से ही पारखी दृष्टि वाले थे। उनकी दृष्टि को पूर्ण सन्तों की पहचान थी और आप जी ने जिन साधुओं को भोजन करवाया था, वे साधारण साधु नहीं थे, बल्कि पूर्ण संत थे। जिसका प्रमाण **'बोध सागर'** के पृष्ठ संख्या 158 पर मिलता है :-

नानक शाह कीन तप भारी।
सब विधि भए ज्ञान अधिकारी।
भगति भाव ता को लखि पावा।
ता पर सतिगुरू कीनो दया।
जिन्दा रूप धरयो तब आई।
प्रभु पंजाब देस चलि आई।
अनहद बाणी किओ पुकारा।
सुनि कै नानक दरस निहारा।
सुनिकै अमर लोक की बाणी।
जानि परा निज समरथ ज्ञानी।

(बोध सागर पृष्ठ 158)

सद्गुरु नानक देव जी ने सच्चा सौदा किया और मुख से उच्चारण किया: -

सचा सउदा विरला को पाए ।।
पूरा सतिगुरु मिलै मिलाए ।।
गुरमुखि होइ सु हुकमु पछाणै
मानै हुकमु समाइदा ।।

(राग मारू पृष्ठ 1036)

सद्गुरु कबीर जी ने भी अपनी पवित्र वाणी में कहा है:-

कबीर सेवा को दो भले,
इक संत इक राम।
राम जे दाता मुकति का
संत जपावै नाम ।।

जब सद्गुरु नानक देव जी ने सन्तों को भोजन करवा दिया तो हाथ जोडकर पूछने लगे कि संत जी ! अब आप अगला संत सम्मेलन कब और कहां कर रहे हैं? तब उत्तर मिला कि आगामी सम्मेलन सुल्तानपुर लोधी में होगा।

सद्गुरु नानक देव जी जब साधुओं की सेवा में बीस रुपए खर्च करके घर पहुँचे तो उधर पिता श्री मेहता कालू राम जी को पता चल गया था कि नानक ने बीस रुपए संतों की सेवा में खर्च कर दिए हैं। क्रोध में आए पिता कालू राम ने कहा कि बड़ी मुश्किल से बीस रुपए इक्ट्ठे किए थे और सोचा था कि तुम कोई अच्छा व्यापार करोगे, धन कमाओगे पर तुमने तो मेरी सारी कमाई तथा सभी सपनों को मिट्टी में मिला दिया। नानक जी विनम्रता सहित बोले-पिता जी! इसमें नाराज होने की क्या बात है? आप ने ही तो कहा था कि सच्चा सौदा करके आना। अतः आप के कहे अनुसार ही मैंने सच्चा सौदा किया है. फिर आप ही बताएं कि अगर मैंने यह गलत किया है तो सच्चा सौदा और कौन सा होता है?

पुत्र के मुख से ऐसे शब्द सुन जब पिता कालू राम लाजबाब हो गए तो कहने लगे-'यदि तूने सन्तों की ही सेवा करनी थी तो किसी उच्चवर्गीय जाति वाले संतों की सेवा करता। क्या ये नीच साधु ही तुम्हें सेवा करने के लिए मिले? पिता जी के मुख से संतों के बारे में ऐसे वचन सुनकर गुरु नानक जी से रहा न गया और बोले, 'पिता जी! नीच तो वे होते हैं जो नीच कर्म करते हैं, जिनका जीवन विकारों से भरा हो। जो मनुष्य के वास्तविक उद्देश्य को मूल गया हो, ये सन्त महापुरुष तो भक्ति, चरित्र, जीवन आदर्शों के धनी हैं, इनकी वाणी में अमृत है, सादी वेश-भूषा है, चेहरे पर नूर है. ये महान सन्त हैं। पिता जी! मेरा तो इन संतो के साथ प्यार हो गया है, जिन्हें आप नीच कह रहे हैं:-

नीचां अन्दर नीच जाति, नीची ही अति नीच।
नानक तिन के साथ संग बडिडया सु किआ रीसु ।।

अपने बेटे नानक के मुख से यह वाणी सुनकर पिता श्री मेहता कालू राम जी के क्रोध की ज्वाला और अधिक बढ़ गई और उसने नानक को थप्पड़ मार दिया। उस समय बेबे नानकी जी (जो श्री गुरु नानक देव जी की बहन थी) ने कहा पिता जी- 'मेरे रब्ब रूप भाई को थप्पड़ क्यों मार रहे हो?' चांदी के सिक्कों के बदले आप ने हीरे को अपमानित किया है। आप नहीं जानते कि जो अमीरी मेरे भाई के पास है, वह किसी अन्य के पास नहीं है।

पिता कालू राम बड़े गुस्से में थे। कहने लगे कि मैं यह सहन नहीं कर सकता कि एक बाप का जवान बेटा बिना काम के घूमता रहे। यदि तुझे इसके साथ ज्यादा ही लाड़-प्यार है तो इसे अपने पास ही ले जा'। इसने कमाई तो क्या करनी है, मेरी कमाई भी उजाड दी है।

बेबे नानकी सद्गुरु नानक देव जी को अपने साथ ले गई। जब वे नानकी जी के साथ जा रहे थे तो पिता ने चेतावनी दी कि नानकी, इसका ध्यान रखना। साधु संतों को देखते ही हाथ जोडने शुरु

कर देता है। मुझे तो डर है कि कहीं यह भी साधु न बन जाए। बेबे नानकी जी ने कहा कि आप चिन्ता न करे, मैं इसका पूरा ध्यान रखूँगी। अब सद्गुरु नानक देव जी अपनी बहन के पास रहने लगे। समय बीतता गया। सुल्तानपुर लोधी में संत सम्मेलन आ गया। गुरु नानक देव जी को बाहर नहीं जाने नहीं दिया जाता था। लेकिन वे सन्तों के दर्शन के लिए व्याकुल थे।

वे जानते थे कि कोई भी उसे घर से बाहर नहीं जाने देगा। तभी आप जी ने बुद्धि से काम लिया। आप जी ने पास वाली नदी में नहाने की इच्छा प्रकट की। वे नदी पर गए, छलाँग लगाई और भीतर ही भीतर से उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ संत सम्मेलन हो रहा था। यह स्थान 'गुरुद्वारा बेर साहब' से करीब तीन किलोमीटर की दूरी पर है। आज वहाँ पर संत घाट के नाम से गुरुद्वारा भी बना हुआ है। यहाँ पर वही महापुरुष थे, जिनकी सद्गुरु नानक देव जी के साथ चूहड़काने में भेंट हुई थी। सभी महापुरुषों ने अपनी-अपनी वाणी कही। इसी संत सम्मेलन में सहज भक्ति, मनुष्य की समानता, स्त्री जाति का सम्मान, सती प्रथा का अंत आदि बुराइयों की रोकथाम के निर्णय लिए गए। लोगों को अंधविश्वास, अज्ञानता, रुढ़िवादिता और भक्ति के कठोर मार्गों से मुक्त करके सरल भक्ति का मार्ग बताया गया जिससे व्यक्ति अज्ञानता के अंधकार से निकाल ईश्वर भक्ति के सच्चे मार्ग पर चलकर ईश्वर को पा सकता है।

इसी विचारधारा को सुनकर श्री गुरु नानक देव जी ने अपनी उदासियों की शुरुआत की और अपनी पहली उदासी का आरम्भ 'संत घाट गुरुद्वारे से ही किया। इसी स्थान पर मूलमंत्र की रचना हुई और इसी सम्मेलन में आप जी ने संकल्प किया कि क्यों न इन संत महापुरुषों की वाणी को इकट्ठा करके एक विशाल ग्रंथ बनाया जाए। उसी के परिणाम स्वरूप पवित्र ग्रंथ 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' का संकलन हुआ। सन्तों के प्रभाव से श्री गुरु नानक देव जी ने उत्तरी भारत में फैली सामाजिक कुरीतियों को दूर किया और एक ईश्वर का संदेश दिया और इन महापुरुषों की वाणी एवं उपदेशों का प्रचार किया।

सद्गुरु नानक देव जी उत्तर प्रदेश की उदासी के दौरान बनारस पहुँचे क्योंकि आप पहले ही बनारस के संत सद्गुरु रविदास जी और सद्गुरु कबीर जी से मिल चुके थे। आपके मन में उन महान सन्तों के दर्शन करने और विचार-गोष्ठी करने की इच्छा पुनः जागृत हुई।

जिसका प्रमाण प्रोफैसर साहब सिंह की पुस्तक **"जीवन वृतांत गुरु नानक देव जी"** के पृष्ठ 80 पर मिलता है। सद्गुरु नानक देव जी का बनारस में सद्गुरु रविदास जी के साथ मिलाप का वर्णन प्रिंसीपल सतबीर सिंह की पुस्तक **"श्री गुरु ग्रंथ साहिब का विस्तार"** के पृष्ठ 238, 239 में भी मिलता है।

अब तक गुरु नानक देव जी भारतीय समाज की दुरावस्था और ग्लानि भरे जीवन से परिचित हो चुके थे। जाति भेद-भाव और वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न विषम रूप धारण कर चुकी समस्याओं से भी चिंतित थे। स्त्री की दुर्दशा और राजाओं की भोग-विलास वृत्ति के कारण चारों ओर का वातावरण अशांत था। ऐसी परिस्थिति में गुरु नानक देव जी सन्त महापुरुषों के साथ मिलकर लोगों को सुखद्

एवं सहज मार्ग दिखाना चाहते थे। इसी उद्देश्य से सद्गुरु नानक देव जी ने तीसरी गोष्ठी काशी में 'गोपालदास की बगीची वाराणसी में की, जहाँ आज 'गुरु का बाग' गुरुद्वारा बना हुआ है।

सद्गुरु कबीर और सद्गुरु रविदास जी के साथ की गई इस गोष्ठी में भक्ति आन्दोलन को मानव-हित के उचित मार्ग पर चलाने की योजना, धार्मिक और आत्मिक विषय सम्बन्धी चर्चा, आगामी धार्मिक समाज-सुधारक गतिविधियों आदि की रूप-रेखा भी तैयार की। यह सद्गुरु रविदास जी की गुरु नानक के साथ अंतिम मुलाकात थी, क्योंकि उस समय सद्गुरु रविदास जी वृद्ध हो चुके थे।

अतः गुरु नानक देव जी संत विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित हुए और इसी धारा के साथ जुड़ कर आप जी ने सिक्ख धर्म की स्थापना की और समाज का सुधार किया। यही कारण है कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में सद्गुरु नामदेव जी, सद्गुरु रविदास जी और सद्गुरु कबीर जी की वाणी भी सुनहरी अक्षरों में दर्ज की गई।

सद्गुरु रविदास महाराज जी की उदासियां और ऐतिहासिक स्थान

काशीपुर से चलकर आयिऊ ।

भारत भ्रमण हेतु मन लायिऊ।

सद्गुरु रविदास महाराज जी महान युगपुरुष हुए हैं। आप जी ने सुदीर्घ और स्वस्थ जीवन बिताया है। 151 वर्ष की इस लम्बी आयु में आप जी ने भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान की। अपने मुखारबिंद से ऐसे वचनों की वर्षा की जिससे समाज में फैले ऊँच-नीच, जाति भेद-भाव और धर्म के प्रति अनेक प्रकार की शंकाए समाप्त हो गईं। सभी के हृदय में ज्ञान का दीया जलने लगा और अज्ञानता का अन्धकार मिट गया। आप जी ने बहुत सी वाणी का उच्चारण किया जिसमें से चालीस शबद और एक श्लोक श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की माला का मोती बन गए। आज भी उन मोतियों को चुग कर अनेक काग हँस बन रहे हैं। लिखित वाणी के साथ-साथ सद्गुरु रविदास महाराज जी ने स्थान-स्थान पर जाकर लोगों को धर्म, एकता और भाईचारे का संदेश दिया।

आप जी ने रमते योगियों की तरह पूरे भारत का भ्रमण किया। लोगों के साथ संपर्क करके आप जी ने उनके मन की मैल को निर्मल किया। आप जहाँ भी जाते, उनके दर्शनों से एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व से लोग प्रभावित होते। रोगियों के रोग दूर हो जाते, बेसहारों को सहारा मिल जाता, अन्धों को दृष्टि मिल जाती और भटके हुए लोगों को जीवन की राह मिल जाती।

दुनिया का भला चाहने वाले महापुरुष एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते और न ही उनका कोई एक ठिकाना होता है। उन्हें किसी चीज का लोभ भी नहीं सताता। पेट की भूख उनको परेशान नहीं करती। अपनी भक्ति की शक्ति और परमार्थ के उद्देश्य से उन्होंने अपने को साध लिया होता है अतः वे फक्कड़ स्वभाव एवं फकीरी भेष में जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी सादगी और उच्च आदर्श ही उन्हें महान बनाते हैं।

इसी तरह सद्गुरु रविदास जी ने भी अनेक उदासियां की और जहाँ भी आप जी के चरण पड़े वहाँ पर एक यादगार बन गई। डॉ. पदम् गुरचरण सिंह जी ने आप जी की यात्राओं के बारे में कहा है कि मथुरा, वृंदावन, प्रयाग, हरिद्वार और कुरुक्षेत्र आदि की यात्रा सद्गुरु रविदास जी ने की थी ।

पण्डित बख्शी दास ने 'रविदास रामायण' में उन धार्मिक स्थानों का वर्णन किया है, जहाँ पर गुरु रविदास जी गए थे। वे स्थान हैं:- प्रयाग, त्रिवेणी, गोदावरी, हरिद्वार, सुल्तानपुर, पंघाट। पण्डित बख्शी राम के अनुसार महापंघाट वह स्थान है जहाँ मीरा जी को रविदास महाराज पुनः मिले थे और आप ने समूचे देश के भ्रमण की इच्छा प्रकट की थी :-

काशीपुर से चलकर आयिऊ।
भारत भ्रमण हेतु मन लायिऊ।

महंत जसवंत सिंह सति दरबारी ने भी अपनी रचना 'श्री रविदास प्रगास' में सविस्तार यात्रा का उल्लेख किया है जिसमें सद्गुरु रविदास जी ने बहुगिणती में अपने सेवकों के साथ भारत के धार्मिक तीर्थ स्थानों का दौरा किया है, उनके अनुसार रविदास जी ने अनेक तीर्थ-स्थानों का भ्रमण किया। आप जी के द्वारा की गई यात्राओं पर ऐतिहासिक, धार्मिक तीर्थ स्थान भी बने हुए हैं।

सीर गोवर्धनपुरा - यह सद्गुरु जी का जन्म स्थान है। यहाँ बहुत बड़ा भव्यशाली मंदिर बना हुआ है। बनारस के पास इस स्थान पर प्रत्येक वर्ष भारी मेला लगता है। देश के सभी हिस्सों और विदेशों से भी श्रद्ध तालु-जन इस पवित्र स्थान के दर्शन करने आते हैं। वहाँ पर लगा इमली का पेड़ आज भी हमें सद्गुरु जी की विलक्षण प्रतिभा एवं सच्ची साधना के दर्शन करवाता है। आप जी के जन्म स्थान संबंधी अनेक मतों के बाद इसी स्थान को जन्म स्थली के रूप में माना गया। यह स्थान वाराणसी से लगभग पाँच किलोमीटर की दूरी पर है।

राजघाट - जिस स्थान पर गंगा के किनारे सद्गुरु रविदास जी ने पण्डितों की झूठी भक्ति का पर्दाफाश किया गया था, उस स्थान पर एक विशाल' श्री गुरु रविदास राजघाट' बना हुआ है। यह भी वाराणसी में है।

लोटा वीर :- यह वह स्थान है जहाँ सद्गुरु रविदास जी की बढ़ती शक्ति एवं महानता को सदा के लिए मिटाने का असफल प्रयास किया गया था। आप जी को मार डालने तैयारी की गई। अनेक योजनाएँ बनाई गईं. लेकिन जिसके साथ स्वयं प्रभु हो उसका यह तुच्छ जीव क्या बिगाड़ सकता है? वाराणसी का यह प्रसिद्ध स्थान हमें सद्गुरु जी की अजरता-अमरता की याद दिलाता है।

बापी मस्जिद :- इस स्थान पर सद्गुरु रविदास जी को सिकन्दर लोधी ने कैद करके रखा था। यह स्थान वाराणसी में स्थित है। आप जी की कठिन प्रभु-भक्ति एवं परमार्थी संत प्रवृत्ति के कारण यह जेल तीर्थ स्थान बनी हुई है।

चरण पादुका :- राजस्थान के चितौड़गढ़ स्थान पर सद्गुरु रविदास जी की चरण पादुकाएं रखी हुई है। यह वह स्थान है जहाँ आपकी शिष्या मीरा बाई ने अपने गुरु की चरण पादुकाएं रखकर उनकी याद को अमर किया था। यह स्थान देखने योग्य है। वहाँ की कला भी अद्वितीय है।

खुराली - पंजाब में स्थित यह स्थान खुराली (खुरालगढ़) में बना हुआ है। इस स्थान पर सद्गुरु रविदास जी को राजा बैन सिंह द्वारा जेल में बंद कर दिया गया था। महाराज जी ने अपनी दिव्य शक्ति का यहाँ भी प्रदर्शन किया था। यह पंजाब का प्रसिद्ध स्थान है। लोग दूर-दूर से इस जगह के दर्शन करने आते हैं।

चक्क हकीम फगवाड़ा इस स्थान पर महाराज जी ने मुल्तान को जाते समय विश्राम किया था और अपने पवित्र चरणों से इस धरती को निर्मल बनाया।

संतघाट गुरुद्वारा :- यह वह प्रसिद्ध स्थान है जहाँ सद्गुरु रविदास जी की पंजाब यात्रा के दौरान श्री गुरु नानक देव जी से भेंट हुई थी। आप जी ने सत्संग किया, प्रवचन किए और श्री गुरु नानक देव जी के साथ धार्मिक जागरण संबंधी और सामाजिक कुरीतियों का खण्डन करने के लिए एक गोष्ठी भी की थी। अनेक संत महापुरुष यहाँ मिल कर बैठे थे।

श्री गुरु रविदास कुण्ड :- यह स्थान सद्गुरु रविदास महाराज जी के अमर कुण्ड की अमरगाथा का प्रतीक है। वह अमृतमयी कुंड लोगों के लिए संजीवनी बूटी के समान था। इस पवित्र जल से अनेक लोगों की अंतःचेतना जाग उठी।

आप जी द्वारा की गई यात्राओं और ऐतिहासिक स्थानों के बारे में भिन्न-भिन्न, विद्वानों ने अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं। लेकिन जिन तीर्थ स्थानों का हमने उल्लेख किया है उन पर आज ऐसी यादगारें बनी हुई हैं जिन्हें देखकर हम सद्गुरु की वाणी एवं स्मृति चिहनों का अंदाजा लगा सकते हैं।

सद्गुरु रविदास महाराज जी महान शिल्पकारी, समाज सुधारक और धर्म प्रचारक थे। आप जी ने चमड़े का काम करके एक तरफ लोगों को हाथ से काम करने के लिए प्रेरित किया, लोगों को चमड़े का यथार्थ बताया, उनके शरीर की जटिल रचना में चमड़े की उपयोगिता बताई, चमड़े के प्रति उच्च वर्ग की गलत धारणा का खण्डन किया, लोगों के भ्रमों को तर्क के साथ दूर किया, वहाँ दूसरी तरफ आप जी ने अनेक स्थानों का दौरा कर लोगों को अज्ञानता एवं भौतिकता की गहरी नींद से जगाया। उस समय यातायात के साधन नहीं थे, पर दिव्य पुरुषों को भौतिक साधनों की आवश्यकता नहीं होती। आप जी ने लम्बा सफर तय करके पूरे संसार में एक ईश्वर का संदेश दिया। लोगों की मानसिकता को समझ कर, उनके रोगों का इलाज किया। आप जी की यात्राओं के कारण दबी-कुचली जनता में जान आई और वर्ण व्यवस्था, जाति-पाति की दलदल में फँसे पाखण्डी परम्परावादी पण्डितों की दुकानदारी बंद करवा कर, भक्ति का सहज और सच्चा मार्ग बताया।

आप जी के चरण कमलों पर निर्मित ये धार्मिक स्थल हमें मध्यकालीन भारत की राजनैतिक, ऐतिहासिक और धार्मिक दशा को दर्शाते ही हैं, साथ में शिरोमणि संत सद्गुरु रविदास महाराज जी की क्रांतिकारी व्यक्तित्व की ज्वलंत उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं।

सद्गुरु रविदास महाराज जी का ब्रह्मलीन होना

पंद्रह सै चउरासी, भई चितौर मंह भीर।
जर जर देह कंचन भई, रवि रवि मिल्यौ सरीर ।।

यह संसार नश्वर है। इस संसार की कोई भी वस्तु, जीव-जन्तु, प्राणी, कंद-मूल, पेड़-पौधे आदि सब कुछ जो भी हमें दिखाई देता है, एक न एक दिन नष्ट होने वाला है। यहाँ तक कि यदि ईश्वर ने भी कभी किसी रूप में धरती पर अवतार धारण किया है तो उसे भी दुनिया की इस रीति को निभाना ही पड़ा है। वह भी शरीरी रूप से नश्वर हुआ है:-

राणा रऊ न को रहै रंगु न तुंगु फकीरु।
बारी आपो-आपनी कोई न बन्धै धीरु ।।

(रामकली 936)

संसार में जो भी जीव आया है, उसे एक दिन यह संसार छोड़कर जाना ही होगा, चाहे वह राजा हो या रंक, अमीर हो या गरीब, स्त्री हो या पुरुष, आस्तिक हो या नास्तिक। इस पाँच तत्वों के बने शरीर को त्यागना ही पड़ता है :-

जग रचना सभ झूठ है, जानि लेहु रे मीत।
कहि नानक थिरु न रहै ज्यों बालू की भीत।।

हमारा शरीर पाँच तत्वों का ऐसा पुतला है, जो रेत के बने घरौंदे की तरह है। यह घरौंदा स्थिर नहीं होता और ज़रा सी ठेस लगने पर ही यह रेत का घर पता नहीं कब ढेरी हो जाए। जीवन तो पानी के बुदबुदे की भांति है जो बनता और बिगड़ता रहता है।

जैसे जल ते बुदबदा उपजै बिनसै नीत
जग रचना तैसे रची कहु नानक सुन मीत

(पृष्ठ संख्या 1427)

यह बात अलग है कि कोई अधिक समय तक जीवित रहता है तो कोई थोड़े ही समय के बाद इस संसार को छोड़ कर चला जाता है परंतु बारी तो सभी की निश्चित है, मौत का स्वाद सभी को चखना ही पड़ेगा। काल से कोई भी बच नहीं सकता। यदि कोई सौ वर्ष का हो जाए तो भी उसे एक दिन मृत्यु से ग्रसित होना ही है :-

बुड्डा होया शेख फरीद कंबन लगी देह।
जे सो बरियां जीवना ते इह तन होसी खेह ।।

महापुरुषों एवं सन्त-वाणियों की दृष्टि से मृत्यु कोई चिन्ता का विषय नहीं है और न ही उन्होंने इससे डरने के लिए ही कहा है बल्कि उन्होंने तो हमें यह कहा है कि मृत्यु को हमेशा याद रखना चाहिए। संतों ने मृत्यु को 'इन्तकाल' करना कहा है अर्थात 'बदलना' जिस प्रकार हम अपने शरीर से पुराना वस्त्र उतार कर नया धारण कर लेते हैं, उसी प्रकार यह जीवात्मा अपने एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है या फिर सङ्कर्मों वाला जीव जन्म-मरण से छुटकारा पाकर उस मालिक के साथ अभेद हो जाता है क्योंकि उसी से बिछुड़कर वह अलग-अलग जोनियों में जन्म लेता है। वैसे तो महापुरुष जन्म-मरण से रहित होते है। वे जिन्दा रहकर भी दिन में सौ-सौ बार मरते हैं और मर कर भी अपनी साधना एवं परमार्थ के कारण दुनिया में अमर हो जाते हैं। संत तो केवल मृत्युलोक में दुनिया का उद्धार करने हेतु आते हैं।

ईश्वर के आदेशानुसार सेवा एवं कर्तव्य को निभाने के लिए मानव जीवन में अवतार धारण करते हैं और मृत्युलोक में आकर अपनी सभी जिम्मेदारियां एवं कर्तव्यों को निभाकर और समाज के लिए अपने पद्-चिह्न छोड़कर उसी परमपिता की गोद में समा जाते हैं। अतः उनके मरने पर शोक नहीं मनाया जाता और न ही वे दुनिया में आकर दुःखी होते हैं। गुरवाणी में भी बताया गया है :-

जनमु मरणु दुहहू महि नाहीं, जन परउपकारी आए।
जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाइ ।।

(पृष्ठ सं. 741)

दुनिया में फैली अराजकता, अज्ञानता, अशांति, अन्याय, पाप और संकटों के अंधकार को मिटाने के लिए ईश्वर समय-समय पर इन सन्त महापुरुषों को मृत्युलोक में भेजता है और समय आने पर लोक परम्परा को निभाते हुए वे संत मानव शरीर को छोड़कर ब्रह्मलीन हो जाते हैं।

इसी प्रकार सद्गुरु रविदास महाराज जी भी 151 वर्ष की लम्बी आयु संसार में बिताकर स्थूल शरीर त्याग कर ब्रह्मलीन हो गए :-

पंद्रह सै चउरासी, भई चितौर मंह भीर।
जर जर देह कंचन भई, रवि रवि मिल्यौ सरीर ।।

कुछ विद्वानों के अनुसार इस कलियुग में इतनी लम्बी उम्र संभव ही नहीं पर प्रभु-भक्त के लिए इतनी आयु का होना कोई अतिशयोक्ति नहीं। इन संत महापुरुषों ने श्वासों पर नियन्त्रण किया होता है, योग-साधनों से वे दिन में कई-कई बार मरते हैं। अभ्यास और प्राणायाम से उनका शरीर निरोग रहता है। सद्गुरु रविदास जी का निर्वाण स्थान चितौड़गढ़ है। कुछ विद्वानों के अनुसार आप जी ने अपना सांसारिक-चोला बनारस में त्यागा था।

महाराज जी विशाल सूर्य की किरण थे, सतिनाम समुद्र के मोती थे जो अपना कर्त्तव्य निभाकर, दुनिया को प्रेरणा देकर उसी समुद्र में मिल गए :-

सूरज किरणि मिले जल का जलु हुआ राम।
जोति जोत रली संपूरन किया राम ।।

(पृष्ठ संख्या 846)

सद्‌गुरु रविदास महाराज जी के जीवन संबंधी सबसे प्राचीन और हस्तलिखित रचना "भगत रत्नावली" रैदास की परिचई है जो आप जी के ज्योति ज्योत समाने के लगभग 48 वर्ष बाद लिखी गई और 1588 में पूर्ण हुई। अनंतदास वैष्णव की इस रचना के अनुसार सद्‌गुरु जी ने चितौड़ में 1527 ई. में अपना शरीर त्यागा।

तीन सौ वर्ष पुरानी हस्तलिखित "कथा गुसांई रविदास जी के समावने की" में भी आप जी के देह त्यागने का जिक्र है। इसके रचनाकार सोढी मेहरबान को माना जाता है और संपादिका डा० ऊषा खन्ना है। इन इतिहासकारों का विचार है कि सद्‌गुरु जी निःसंदेह ही देह सहित ही सद्‌गुरु परलोक में चले गए थे। यदि उनकी देह का संस्कार किया होता तो आप जी के ज्योति-ज्योत समाने वाले स्थान पर अवश्य कोई न कोई यादगार बनी होती ।

परन्तु ऐसा होना कोई ज़रूरी नहीं क्योंकि सद्‌गुरु रविदास महाराज जी भौतिक यादगारों में विश्वास नहीं रखते थे। कहा जाता है कि सद्‌गुरु रविदास महाराज जी ने अपने महानिर्वाण के दस दिन पहले अपने श्रद्‌धालुओं को एकत्रित किया और कहने लगे प्रियजनों! आज से दस दिन बाद मैं अपना यह स्थूल शरीर छोड़ जाऊँगा, लेकिन आप दुःखी मत होना, चिन्ता मत करना। मेरा सूक्ष्म रूप सदैव आप के साथ रहेगा। जिस भी रूप में आप मुझे याद करेंगे, उसी रूप में मैं आपके समक्ष रहूँगा।

महाराज जी के प्रवचन सुनकर भक्तजनों की आँखें नम हो गई। गुरु के बिछुड़ने की बात सुनकर शिष्य का हृदय व्याकुल हो जाता है। आँसुओं की झड़ी लग जाती हैं। एक श्रद्‌धालु ने अपने व्याकुल मन को ढाढस देते हुए महाराज जी से विनम्र निवेदन किया- 'महाराज! हमें यह तो बता दो कि आप इस मृत्युलोक को छोड़कर कहाँ जा रहे हो? क्या उस स्थान का कोई नाम है? वह स्थान कैसा होगा? श्रद्‌धालुओं की तीव्र उत्सुकता को जानते हुए महाराज जी ने कहा था

'जिस शहर में मैं जा रहा हूँ उस शहर का नाम "बेगमपुरा" है। इस शहर में किसी प्रकार का कोई दुख नहीं होगा, किसी को किसी का डर नहीं सताएगा सभी स्वतन्त्र होंगे, सभी समान होंगे, ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं होगा। आप जी ने कहा कि केवल प्रभु का सच्चा नाम ही अमर है, उसी का सिमरन करके ही हम बेगमपुरे के वासी बन सकते हैं। वहाँ पर किसी भी प्रकार का कोई दुःख नहीं है। वहाँ न कोई गरीब है न अमीर, न छोटा है न बड़ा।

बेगमपुरा सहर को नाउ। दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ।
नां तसवीस खिराजु न मालु ।।
खउफु न खता न तरसु जवालु । ।१ ।।
अब मोहि खूब वतन गह पाई।
ऊहां खैरि सदा मेरे भाई ।।१।। रहाउ ।।
काइमु दाइमु सदा पातिसाही।
दोम न सेम, एक सो आही।
आबादानु सदा मसहूर ।
ऊहां गनी बसहि मामूर।।२।।
तिउ तिउ सैल करहि, जिउ भावै।
महरम महल न को अटकावै।
कहि रविदास खलास चमारा।
जो हम सहरी सु मीतु हमारा ।।३।।

(आदि ग्रन्थ पन्ना 345)

सद्गुरु रविदास महाराज जी के बेगमपुरा संकल्प को साकार करने वाले प्रमुख संत आश्रम एवं संस्थाएं

सद्गुरु रविदास महाराज जी के ज्योति-ज्योत समा जाने के बाद आप जी के मिशन को आगे बढ़ाने वाले बुद्धिजीवियों का अभाव रहा लेकिन आज भारत में बहुत से संत महापुरुष और जन-कल्याण संस्थाएँ हैं, जिन्होंने सद्गुरु जी की वाणी एवं उपदेशों को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया है। उनमें से कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार हैं:-

1. श्री श्री 108 स्वामी गुरदीप गिरी महाराज जी की रहनुमाई में डेरा स्वामी जगत गिरी पठानकोट, पंजाब।
2. डेरा संत सरवण दास, गद्दीनशीन श्री 108 संत निरंजन दास जी, गांव एवं डाकखाना बल्लां, जालन्धर, पंजाब ।
3. डेरा बाबा सीतल दास, गद्दीनशीन श्री 108 संत सरवन दास जी, गांव एवं डाकखाना बोहनपट्टी, होशियापुर, पंजाब।
4. डेरा बाबा प्रीतम दास जी, गद्दीनशीन संत निर्मल दास, रायपुर-रसूलपुर जालन्धर, पंजाब ।
5. डेरा बाबा रतन पूरी, गद्दीनशीन श्री 108 संत हरचरण दास जी. गांव एवं डाकखाना जेजों, होशियारपुर, पंजाब ।
6. डेरा बाबा राझें दास, गद्दीनशीन श्री 108 संत चरण दास जी, गांव एवं डाकखाना गज्जर महदूद (जेजौं) होशियापुर, पंजाब।
7. डेरा बाबा गोबिन्द दास, गद्दीनशीन श्री 108 संत बाबा चमन दास जी उदासीन, जी.टी. रोड, फगवाड़ा, कपूरथला, पंजाब ।

8. डेरा संत नारायण दास, गद्दीनशीन श्री स्वामी अमर दास जी, गांव एवं डाकखाना शेरपुर कल्लर, होशियारपुर, पंजाब।
9. डेरा बाबा फूल नाथ, गद्दीनशीन श्री 108 संत किशन नाथ जी, नानक नगरी, गांव एवं डाकखाना चिहेडू, तहसील फगवाड़ा, कपूरथला, पंजाब।
10. डेरा बाबा गोबिन्द दास, गद्दीनशीन श्री 108 संत चमन दास जी, गांव एवं डाकखाना बजवाड़ा, होशियारपुर, पंजाब।
11. डेरा श्री 108 संत सरवण दास जी, मोहल्ला सलेम टाबरी, लुधियाना, पंजाब ।
12. डेरा बाबा टहल दास, गद्दीनशीन श्री 108 संत तपस्या गिर जी, गांव एवं डाकखाना बबेली, होशियारपुर, पंजाब।
13. डेरा बाबा नंद गिरी, गद्दीनशीन श्री 108 संत श्रद्धा राम जी, देहुरा सतिगुरु रविदास मंदिर, जी.टी. रोड़, गांव एवं डाकखाना चक्क हकीम, फगवाड़ा, कपूरथला, पंजाब।
14. डेरा संत ब्रह्म दास गद्दीनशीन, श्री 108 संत रूड़ा राम जी (चिसती साबरी) गांव एवं डाकखाना फिलौर, जालन्धर, पंजाब ।
15. डेरा बाबा ब्रह्म दास, जागर राम जी, अकलपुर रोड़, फिल्लौर, जालन्धर, पंजाब ।
16. डेरा बाबा मेला राम, श्री 108 संत भगवान दास जी, गांव एवं डाकखाना नगर, तहसील, फिल्लौर, जालन्धर।
17. डेरा संत सवन दास, गद्दीनशीन श्री 108 संत रामदास जी, दरबार गांव एवं डाकखाना हरिपुर खालसा, जालन्धर, पंजाब ।
18. डेरा संत वीर सिंह हितकारी, बुलन्द शहर (उत्तर प्रदेश)
19. संत निर्मल दास, गांव आबादान, जिला जालन्धर, पंजाब।
20. संत सुमन दास, डेरा मुज्जफर नगर (उत्तर प्रदेश)
21. संत राम रतन, गांव दियाल जिल कागड़ा। (हि. प्र.)
22. डेरा 108 संत बीबी मलावी देवी जी, नकोदर रोड, बूटा मंडी, जालन्धर, पंजाब।
23. डेरा पीर, मौले शाह जी. गांव एवं डाकखाना अनीहर, तहसील फिल्लोर, जालन्धर, पंजाब।
24. डेरा बाबा मंगल दास, श्री 108 संत हरचरण दास जी, गांव एवं डाकखाना उच्चा, जालन्धर, पंजाब।
25. डेरा बापू मंगल दा, गद्दीनशीन श्री 108 संत पाखर सिंह जी, गांव एवं डाकखाना डींगरियां, जालन्धर, पंजाब ।
26. डेरा महाराज जसवंत परमहंस जी, कुटिया श्री गंग भवन, गांव एवं डाकखाना हजारा, जालन्धर, पंजाब।
27. डेरा श्री 108 संत राम सरन दास जी, गांव एवं डाकखाना कपूर पिंड, जालन्धर, पंजाब ।
28. डेरा 108 संत बीबी कृष्णा देवी जी, गांव एवं डाकखाना बोपाराए कलां, जालन्धर, पंजाब।
29. डेरा श्री 108 संत लेख राज जी, गांव एवं डाकखाना नूरपुर, जालन्धर, पंजाब।
30. डेरा संत अवतार दास जी, गांव एवं डाकखाना पद्दी खालसा (जालन्धर) पंजाब ।
31. डेरा संत करतार दास जी, गांव एवं डाकखाना बिलगा (जालन्धर) पंजाब ।

32. डेरा संत कपूर दास जी, गांव एवं डाकखाना अबादपुरा (जालन्धर) पंजाब ।
33. डेरा संत अजीत दास जी, गांव रेरू (जालन्धर) पंजाब।
34. डेरा संत मलकीत दास जी, डेरा संतपुर जबड़, गांव एवं डाकखाना मानको, जालन्धर, पंजाब।
35. डेरा संत कश्मीर नाथ जी, डेरा बाब बदरी नाथ जी, वी.पी.ओ. रहीमपुर (जालन्धर) पंजाब।
36. डेरा संत गुरवचन दास जी, गांव एवं डाकखाना जगीर (जालन्धर) पंजाब ।
37. डेरा श्री 108 संत सतनाम सिंह जी गांव एवं डाकखाना खन्नी, होशियारपुर, पंजाब।
38. डेरा श्री 108 संत कृपाल सिंह जी. गांव एवं डाकखाना खानपुर, होशियारपुर, पंजाब।
39. डेरा श्री 108 संत इन्द्रजीत जी. गांव एवं डाकखाना सरदूलापुर, होशियारपुर, पंजाब।
40. डेरा श्री 108 संत प्रेमदास जी गांव एवं डाकखाना रजपालवां, होशियारपुर, पंजाब।
41. डेरा श्री 108 संत परशोतमनन्द जी गांव एवं डाकखाना ललवान, होशियारपुर, पंजाब।
42. डेरा श्री 108 संत हरचरण दास जी, गांव एवं डाकखाना शामचौरासी, होशियारपुर, पंजाब।
43. डेरा श्री 108 संत हरिओम जी गांव एवं डाकखाना माहिलपुर, होशियारपुर, पंजाब।
44. डेरा श्री 1088 संत सतनाम सिंह जी, गांव एवं डाकखाना बवेली. होशियारपुर, पंजाब।
45. संत इस्सर दास, आनन्तगढ़, हिमाचल प्रदेश।
46. डेरा श्री 108 संत हरि दास जी, गांव एवं डाकखाना डांडियां, तहसील माहिलपुर, होशियारपुर, पंजाब।
47. डेरा श्री 108 संत गुरमेल दास जी, मोहल्ला रहीमपुर, होशियारपुर, पंजाब।
48. डेरा श्री 108 संत चानण राम जी. गाव एवं डाकखाना शेरगढ़, होशियारपुर, पंजाब।
49. डेरा श्री 108 संत हुसन लाल जी, गांव एवं डाकखाना लाचोवाल, होशियारपुर, पंजाब।
50. डेरा श्री 108 संत गुरदियाल सिंह जी, गांव एवं डाकखाना फगवाड़ा, होशियारपुर, पंजाब।
51. डेरा श्री 108 संत बतन गिर जी, गांव एवं डाकखाना नंगल खूगा, होशियारपुर, पंजाब।
52. डेरा संत निर्मल दास जी गांव एवं डाकखाना महितपुर होशियारपुर पजाब।
53. डेरा संत सेवा दास जी, गांव एवं डाकखाना बजरावर (होशियारपुर) पंजाब।
54. डेरा संत ओम लाल जी, गांव एवं डाकखाना नूरपुर होशियारपुर पंजाब।
55. डेरा संत चरन दास जी, गांव एवं डाकखाना शेरगढ़, होशियारपुर, पंजाब।
56. डेरा संत कुन्दन लाल जी, गांव एवं डाकखाना कालेवाल लल्लियों, होशियारपुर, पंजाब।
57. डेरा संत बीबी जवाली राम जी गांव एवं डाकखाना शेरपुर ढक्कों, होशियारपुर, पंजाब।
58. डेरा संत गुरमीत दास जी, गांव एवं डाकखाना पिपला वाला होशियारपुर पंजाब।
59. डेरा संत गरीब दास जी, गांव एवं डाकखाना खेडा, होशियारपुर पंजाब।
60. डेरा संत करतार दास जी. गांव एवं डाकखाना टूटो माजरा, होशियारपुर, पंजाब ।
61. डेरा संत ओम प्रकाश जी, गांव एवं डाकखाना बनेवाल, होशियारपुर, पंजाब।
62. डेरा संत गुरमेल दास जी गांव एवं डाकखाना रहीमपुर, होशियारपुर पंजाब।
63. डेरा संत निरमल सिंह जी, कुल्ली बाबा तारा सिंह खुशदिल, गांव दरियां, डाकखाना घोडेवाहा, होशियारपुर, पंजाब।
64. डेरा श्री 108 संत टहल नाथ जी गांव एवं डाकखाना नंगल खेड़ा, कपूरथला, पंजाब।

65. डेरा संत प्रीतम दास जी. गांव एवं डाकखाना संगतपुर तहसील फगवाडा, कपूरथला, पंजाब।
66. डेरा श्री 108 संत शाम दास जी, गांव एवं डाकखाना महिला-गहिला, वाया बंगा, नवाशहर, पंजाब।
67. डेरा संत चरन दास जी गांव एवं डाकखाना चक्क कलाल, नवांशहर, पंजाब ।
68. डेरा संत बलदेव सिंह जी, गांव एवं डाकखाना जगतपुर बघोरा, नवांशहर, पंजाब।
69. डेरा संत कुलवंत राम जी, गांव एवं डाकखाना भरो-माज़ारा, नवांशहर, पंजाब ।
70. डेरा श्री 108 संत गोबिन्द दास जी, गांव एवं डाकखाना रहीमाबांद खुर्द, लुधियाना, पंजाब ।
71. डेरा श्री 108 संत गोपाला नंद जी, गांव एवं डाकखाना पस्सीवाल, रोपड़, पंजाब।
72. डेरा श्री 108 संत प्रीतम दास जी, गांव एवं डाकखाना गोहलनी. रोपड़, पंजाब।
73. डेरा संत ज्ञान नाथ जी, रविदास मंदिर, पी.जी.आई. सैक्टर-12, चण्डीगढ़।
74. डेरा स्वामी शिंगारा गिरी, संत पूर्ण गिरी, संत खजान दास जी, गांव पलोटा साहब, डाकखाना रामगढ़, तहसील साबां, जिला जम्मू, (जे.एण्ड.के.)
75. डेरा श्री 108 संत सुखविन्द्र सिंह जी, गांव एवं डाकखाना तलवंडी साबो, संगरूर, पंजाब ।
76. डेरा श्री 108 संत बैसाखी दास जी, गांव एवं डाकखाना तंदवाली, हरियाणा।
77. डेरा श्री 108 संत जोगिन्द्र दास जी, जगाधरी, लुधियाना, पंजाब।
78. डेरा श्री 108 संत संपूरन दास जी, गांव एवं डाकखाना पिंजौर, पंचकुला, हरियाणा।
79. डेरा श्री 108 संत भाई चंद दास जी, गांव एवं डाकखाना दूबली आश्रम, अम्बाला, हरियाणा।
80. डेरा संत फूल चंद जी, कालपी, अम्बाला, हरियाणा। (डेरा बनारसी दास जी)
81. डेरा संत लगन दास जी, गांव एवं डाकखाना खेड़ी, हरियाणा।
82. डेरा संत राम दास जी, गांव एवं डाकखाना दराला, अम्बाला हरियाणा।
83. डेरा श्री 108 संत सूरज नाथ जी, गांव एवं डाकखाना धीन, अम्बाला, हरियाणा।
84. डेरा श्री 108 संत मेघदास जी, गांव एवं डाकखाना गड़ी-गोसाई, हरियाणा।
85. डेरा संत वीर सिंह जी, बुलंद शहर हरियाणा।

श्री गुरु रविदास विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार करने वाली प्रमुख जन-कल्याण संस्थाएँ

86. श्री गुरु रविदास संप्रदाय साधु समाज सोसाइटी, पंजाब । मुख्य दफ्तर कालेवाल भगतां।
87. श्री गुरु रविदास चेरीटेबल टस्ट्र, वाराणसी।
88. श्री गुरु रविदास सभा, मोहाली।
89. ऑल जम्मू कश्मीर गुरु रविदास सभा कृष्णा नगर, जम्मू।
90. श्री गुरु रविदास वेल्फेयर सोसाइटी, बूटा मंडी, जालन्धर।
91. श्री गुरु रविदास देहरा साहब, चक्क हकीमां फगवाड़ा।
92. ऑल इण्डिया श्री गुरु रविदास मिशन, दिल्ली।
93. श्री गुरु रविदास सेन्ट्रल मंदिर कमेटी, मुख्य दफ्तर-रहगढ़पुरा, दिल्ली ।